आलोचनात्मक अध्ययन - ३

(प्रश्नोत्तर रूप में)

सूरदास

Dr Bushan lal Kaul.
M.A (B.H.U.
Kashmir University

—वासुदेव शर्मा शास्त्री

सूरदास

[आलोचनात्मक अध्ययन]

लेखक—

श्री वासुदेव शर्मा शास्त्री

विनोद पुस्तक मन्दिर,

हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पीटल रोड, आगरा।

पंचम संस्करण—अक्टूबर १९५९
मूल्य २॥)

शंकर प्रेस, आगरा।

दो शब्द

आजकल प्रायः सभी विश्व-विद्यालयों की एम० ए० (हिन्दी) में, प्रयाग हिन्दी विश्वविद्यालय की साहित्यरत्न में एवं साहित्यालङ्कार (बिहार) की परीक्षाओं में सूरदास और अन्य भी कई कवि विशेष अध्ययन के लिए निर्धारित हैं। छात्रगण प्रायः सूरदास को ही निर्वाचित करते हैं।

यद्यपि सूर पर बहुत सा साहित्य उपलब्ध है तथापि परीक्षोपयोगी दृष्टिकोण से अत्यल्प है। हमने प्रस्तुत "एक अध्ययन" प्रश्नोत्तर रूप में परीक्षोपयोगी दृष्टि से ही लिखा है।

सूर के सम्बन्ध में आलोचनात्मक एवं व्याख्यात्मक दो प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। व्याख्या का ढंग या उसके पद हमने नहीं दिए। केवल आलोचना से सम्बद्ध सभी प्रश्न जैसे—जीवनी, रचनाएँ, सिद्धान्त, भक्ति-भावना, चरित्र-चित्रण, लीला रहस्य व काव्य समीक्षा आदि दे दिए हैं। प्रायः यही प्रश्न परीक्षओं में पूछें भी जाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में हमने श्री पं० मुन्शीराम शर्मा "सोम", डा० ब्रजेश्वर वर्मा, श्री प्रभुदयाल मीतल, श्री रामरत्न भटनागर एवं आचार्य शुक्ल द्वारा लिखित सूर-सम्बन्धी पुस्तकों से पूर्ण सहायता ली है, अतः उन सभी महानुभावों के प्रति हम अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करते हैं। साथ ही हम विनोद पुस्तक मन्दिर के संचालकों का विशेष आभार स्वीकार करते हैं जिनकी प्रेरणा से हम इस कार्य को पूर्ण कर सके।

हमें आशा है कि "सूरदास" के विद्यार्थियों को इससे पूर्ण लाभ प्राप्त होगा।

दिल्ली
दीपावली, २०११

—बासुदेव शर्मा

प्रश्न सूची

कुछ अन्य सामान्य प्रश्न

प्रश्नोत्तर---

प्रश्न १— महाकवि सूरदास के जीवन के सम्बन्ध में जो सामग्री प्राप्त है, उस पर पूर्ण प्रकाश डालिए।

उत्तर—भारतीय ऋषि परामर्थ प्रिय थे। वे प्रत्यक्ष से नहीं, अपितु परोक्ष से प्रेम करते थे। इसीलिए कुछ रचना करके भी अपना परिचय देने की परिपाटी उनमें न थी एवं ना ही उन्होंने समझी, क्योंकि वे नम्र थे, तत्वदर्शी थे। वे अवतारों या चरित्रों की गाथा गाते-गाते उसी में इतना निमग्न हो जाते कि उन्हें अपनी विज्ञप्ति की बात ही न सूझती थी। महाकवि सूरदास के विषय में भी यही कथन ठीक है।

किसी कवि का जीवन-वृत्त जानने के दो साधन हैं। (१) अन्तः साक्ष्य अर्थात् कवि ने अपनी रचनाओं में अपने सम्बन्ध में परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप में जो कुछ कहा है : (२) वाह्य साक्ष्य अर्थात् कवि के समसायिक तथा परवर्ती विद्वानों ने उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा है। इन दोनों साधनों में अन्तः साक्ष्य का अधिक मूल्य है। वाह्य साक्ष्य में सम-सामयिक विद्वानों का कथन अधिक प्रामाणिक है।

अतः यदि हम सूरदास की जीवनी के लिए कुछ अन्वेषण करते हैं तो हमें भी निम्न आधारों की शरण लेनी पड़ती है।

१—आत्म-निवेदन सम्बन्धी पद। २—सूरदास के कूट पद।	अन्तः साक्ष्य
३—किंवदन्तियाँ। ४—इतिहासकारों तथा अन्य समकालीन लेखकों की रचनाओं के उल्लेख।	वाह्य साक्ष्य

अन्तः साक्ष्य :

अब हम इन आधारों को ध्यान में रख कर सूर के जीवन-वृत्ति के सम्बन्ध में विचार प्रकट करेंगे। अन्तः साक्षियों में सूर-सारावाली का एक पद,

साहित्य-लहरी के दो पद तथा सूर-सागर के कई पद सूर के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने वाले हैं। इन पदों से सूर के जीवन के सम्बन्ध में अनेक बातें ज्ञात हो जाती हैं। सूर-सारावली की निम्नलिखित पंक्तियों पर विचार कीजिए—

'गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
शिव विधान तप करयो बहुत दिन तउ पार नहिं लीन॥''

इन पंक्तियों में से प्रथम पंक्ति को ले कर प्रायः सभी आधुनिक विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि सूर-सारावली बनाने के समय सूरदास जी की आयु ६७ वर्ष की थी और महाप्रभु वल्लभाचार्य से मिलने से पूर्व वे शैव थे।

अन्तःसाक्षियों में साहित्य-लहरी के दो पद अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। एक पद साहित्य-लहरी के निर्माण के समय पर निश्चित रूप से प्रकाश डालता है; और दूसरा पद सूर के वंश तथा उनके जीवन से सम्बद्ध अनेक बातों को प्रकट करता है। प्रथम पद इस प्रकार है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि, सुबल सम्वत् पेख॥
नन्द नन्दन मास, छै ते हीन तृतियाबार।
नन्दनन्दन जनम ते हैं वान सुख आगार॥
तृतीय ऋक्ष, सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन।
नन्द-नन्दन-दास-हित साहित्यलहरी कीन॥

सूरदास जी इस पद में साहित्य-लहरी का निर्माण काल बता रहे हैं। नीचे की पंक्ति से यह भी प्रकट हो रहा है कि साहित्य-लहरी भगवान् कृष्ण के भक्तों के लिये लिखी गई है। साहित्य-लहरी कब लिखी गई, इस बात का उल्लेख ऊपर के पद की पंक्तियों में इस प्रकार है, मुनि = ७, रसन अर्थात् रसना = १ या कार्यों की दृष्टि से = २, रस = ६, दसन गौरीनन्द = १, "अङ्कानां वामतो गति" के अनुसार उलट कर पढ़ने से सम्वत् निकला १६१७ या १६२७। नन्दनन्दन मास से अभिप्राय है, बैसाख का महिना; क्षय से हीन तृतीया अर्थात् अक्षय तृतीया। तृतीय ऋक्ष अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र। उस दिन सुकर्म योग था; नन्द-नन्दन (कृष्ण) जन्म बुधवार से वाण अर्थात् पाँचवां दिन रविवार हुआ।

मुसल सम्वत् का नाम था। इस पद में वर्णित सम्वत् के विषय में भी भेद है। यह भेद 'रसन' शब्द को लेकर हुआ, क्योंकि 'रसन' का कुछ कवियों ने 'एक' अर्थ लिया है और कुछ ने 'दो'। श्री मुन्शीराम शर्मा "सोम" के मतानुसार उसका अर्थ दो ही समीचीन है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा इसका अर्थ १६०७ लेते है, किन्तु साथ ही उन्होने कहा है कि यह पुस्तक सूरकृत नहीं हो सकती क्योंकि इसमें आत्म विज्ञापन की भावना है जो कि सूर की वृत्ति के विरुद्ध है और इसमें केवल युगल रूप के दर्शन का ही उल्लेख है। इससे उनकी जन्म-तिथि नहीं निकाली जा सकती।

साहित्य-लहरी के इस पद के अनुसार सूर १६२७ सम्वत् तक अवश्य जीवित थे। इसी सम्वत् के आस-पास ही उनकी अकबर से भेंट हुई होगी। वे सम्वत् १६४२ के पूर्व निश्चय ही स्वर्गधाम सिधार चुके थे, जैसा कि आगे उद्धृत "चौरासी वार्ता" के साक्ष्य से प्रमाणित होता है।

साहित्य-लहरी का दूसरा पद सूरदास जी के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। वह पद बहुत लम्बा है, किन्तु उसमें वर्णित भाव संक्षेप में इस प्रकार है—

सूर पृथ्वीराज के कवि चन्दबरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट थे। चन्दकवि के कुल में हरीचन्द हुए, जिनके सात पुत्रों में से सबसे छोटे सूरदास या सूरजदास थे। शेष ६ भाई जब यवनों से युद्ध करते हुए मारे गये तब अन्धे सूरदास बहुत दिनों तक इधर उधर भटकते रहे। एक दिन वे कुँए में गिर पड़े और ६ दिन तक उसी में पड़े रहे। सातवें दिन भगवान् कृष्ण उनके सामने प्रकट हुए और उन्हें दृष्टि देकर अपना दर्शन दिया। भगवान ने कहा, दक्षिण के एक प्रबल ब्राह्मण कुल द्वारा शत्रुओं का नाश होगा और तू सब विद्याओं में निपुण होगा। इस पर सूरदास ने वर माँगा कि जिन आँखों से मैंने आपका दर्शन किया उनसे और अब कुछ न देखूँ तथा सदा आपका भजन करूँ। कुएँ से भगवान् ने जब इन्हें बाहर निकाला तब वे ज्यों के त्यों अन्धे हो गए और ब्रज में आकर भजन करने लगे। आचार्य बल्लभ के पुत्र गो० विट्ठलनाथ जी ने सूरदास को अष्टछाप में प्रमुख स्थान दिया।

इसके सम्बन्ध में भी डा० ब्रजेश्वर वर्मा का मत है कि "इस पद में अपना

परिचय देने वाला कोई सूरजचन्द नामक ब्रह्मभट्ट है। उसने एक ओर अपने को चन्दबरदाई का वंशज घोषित किया है और दूसरी ओर सूरदास से अभिन्न सिद्ध करना चाहा है, किन्तु सूरजचन्द का सूरसागर में कहीं प्रयोग नहीं हुआ है, इसलिए उसने कहा कि श्रीकृष्ण ने स्वयं उसका नाम सूरजदास और सूर स्याम रखा। यह सूरजचन्द नामक कवि अनुमानतः रीतिकाल के पूर्व नहीं हुआ होगा, क्योंकि उसकी प्रवृत्ति रीतिकालीन कवियों का अनुकरण भर करने की है। उनका पूर्ववर्ती वह नहीं हो सकता, भले ही "मुनि पुनि रसन के रस लेष" आदि में कोई भी तिथि निकलती हो उस पद का उद्देश्य तो साहित्य-लहरी को सूर-कृति के रूप में प्रसिद्ध करना है।"

इसके अतिरिक्त 'सूरसागर' में भी कुछ ऐसी अन्तः साक्षियाँ हैं जिनसे सूर के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सूर के गर्हस्थ्य जीवन के सम्बन्ध में निम्न पद विचारणीय हैं—

(१) कितक दिन हरि सुमिरन विनु खोये।
परनिन्दा रसना के रस में अपने पर-तर बोये॥

+ + +

(२) अब के माधव मोहि उधारि।
मगन हों भव अम्बुनिधि में कृपा सिन्धु मुरारि॥
नीर अति गम्भीर माया, लोभ लहरी तरङ्ग।
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनङ्ग॥

(३) अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिर चोलना कण्ठ विषय की माल॥

(४) मेरी तो पति गति तुम अन्तहि दुःख पाऊँ।
हौं कन्हाई तिहारौं अब कौन को कहाऊँ॥

+ + +

(५) सागर की लहर छाँड़ि खार कत अन्हाऊँ।
सूर कूर आँधरौ हौं द्वार परयौ गाऊ॥

इन पद्यों में उन्होंने अपने जीवन में किए ठाठ व पापों का वर्णन किया है। साथ ही इससे उनकी अन्धता के विषय में भी पता चलता है। इन अन्तः

साक्षियों के आधार पर सूर के लौकिक जीवन की कतिपय बातें ज्ञात हो जाती हैं। "सूर के इन पदों में तत्कालीन स्थिति का ही अधिक ज्ञान होता है। सम्भवतः जन-साधारण की यही स्थिति उस समय थी।" ऐसा विद्वानों का मत है।

बाह्य साक्षियाँ :—

नाभादास जी ने 'भक्तकाल' में सूरदास के सम्बन्ध में केवल एक ही छप्पय लिखा है, जो इस प्रकार है :—

उक्ति, चोज, अनुप्रास, बरन अस्थिति अति भारी।
वचन, प्रीति निर्वाह, अर्थ अद्भुत, तुक धारी॥
प्रति बिम्बित दिवि दृष्टि, हृदय हरि लीला भासी।
जन्म, कर्म, गुन, रूप सबैं रसना जु प्रकासी॥
विमल बुद्धि गुनि और की, जो वह गुन स्रवननि धरै।
श्री सूर कवित्त सुनि कौन, कवि, जो नहिं सिर चालन करै॥

इस छप्पय में सूर के अन्धे होने भर का संकेत है, जो परम्परा से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त किसी भी बात का पता नहीं चलता।

पुष्टि सम्प्रदाय में ऐसा प्रसिद्ध है कि सूरदास जी महाप्रभु से केवल दस दिन छोटे थे। इसी जनश्रुति के आधार पर उनकी जन्मतिथि विक्रमी सम्वत् १५३५ वैसाख शुक्ल पंचमी मानी जाती है। विट्ठलनाथ जी के साथ गोकुल-निवास, अकबर से भेंट आदि घटनाओं से भी इस तिथि की संगति बैठ जाती है। कुछ, विद्वान १५४० में उनका जन्म मानते हैं।

चौरासी वैष्णवों की वार्ता में—जो कि गो० विट्ठलनाथ जी के पुत्र गो० गोकुलनाथ ने लिखा है—उल्लेख मिलता है कि सूरदास गऊघाट के ऊपर रहते थे। वह घाट आगरा व मथुरा के बीच है। आचार्य बल्लभ से भेंट करने के पूर्व सूरदास सन्यासी हो चुके थे और इनके अनेक शिष्य इनकी सेवा में रहते थे। ये वैष्णव थे और गाना बहुत अच्छा गाते थे। एक बार महाप्रभु इनसे मिले, उन्होंने सूर को पद सुनाने के लिए कहा।

जहाँ तक सूरदास जी के जन्मस्थान का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में अभी तक

कोई मत नहीं। कुछ विद्वान् उनका स्थान रुनकता बताते हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य की पाँचवी पीढ़ी में गोसाईं हरिराय नाम के एक पुष्टि-मार्गीय विद्वान् हुए। उनके कथनानुसार दिल्ली से चार कोस दूर सीही ग्राम सूर का जन्म स्थान है। उन्होंने सूर को सारस्वत ब्राह्मण कहा है। कहते हैं कि ये छः वर्ष की अवस्था में ही घर से निकल पड़े थे और गाँव से चार कोस दूर तालाब के किनारे रहने लगे। एक जमींदार ने उनके लिये झोंपड़ा बना दिया और खाने-पीने का प्रबन्ध कर दिया। वैराग्य भंग होने के भय से वह वहाँ से भाग खड़े हुए। ऐसा कहते हैं कि वे अलौकिक प्रतिभा लेकर उत्पन्न हुए थे। वे जन्म से न केवल अन्धे थे बल्कि उनकी आंखों के ठीकरे भी न थे। छः वर्ष की अवस्था में उन्होंने पिता की दान में प्राप्त खोई हुई मोहरों का पता बता दिया था। इसी चमत्कार के कारण वे घर छोड़ने में समर्थ हुए। जमींदार भी उनका भक्त इसी कारण हुआ था कि उन्होंने उसकी खोई हुई गौएं बता दी थीं। इस तालाब के पास रहते ही उनकी बहुत प्रसिद्धि हो गई थी और ये वैभव-सम्पन्न हो गये थे। उस समस्त धन को माता पिता को सौंप ये आगरा और मथुरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे। चमत्कारी और निपुण गायक होने के कारण वहाँ भी उनके अनेक सेवक हो गये। वे प्रसिद्ध सन्त रूप में विरक्त हो गये। (इसमें उनके विवाह आदि का कोई उल्लेख नहीं। अतः उनके कोई पुत्र कलत्र नहीं थे)।

सूर के सम्बन्ध में यह भी प्रसिद्ध है कि वह सीही ग्राम की किसी रूपवती युवती पर मुग्ध हो गये थे और अन्त में उसी के द्वारा नेत्र फुड़वाकर कृष्ण के सौन्दर्य चिन्तन में रत हो गये, किन्तु यह जनश्रुति हमारे चरित-नायक-सूरदास के सम्बन्ध में न होकर बिल्व मङ्गल सूरदास के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है। यही बात सूरदास मदनमोहन सूरध्वज के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है जो कुछ समय तक अकबर की सभा में थे और दिल्ली के समीप किसी ग्राम के रहने वाले थे।

सूरदास जी की जाति के विषय में तरह-तरह के विवाद हैं। "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में इनकी जाति के विषय में कोई उल्लेख नहीं, किन्तु-पुष्टि-मार्गीय सम्प्रदाय में इन्हे सारस्वत ब्राह्मण स्वीकार किया गया है। इसका आधार भी गोसाईं हरिराय द्वारा रचित भावप्रकाश है। "अष्टछाप और

बल्लभसम्प्रदाय" के लेखक डा० दीनदयाल गुप्त भी इन्हें "वार्ता" की किसी प्रति के आधार पर सारस्वत ब्राह्मण कहते हैं पर उन्होंने इसकी सत्यता नहीं मानी। "सूरदास प्रभु तुम्हारी भक्ति लगि तजी जाति अपनी" सूर के इस पद के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भक्ति में लीन होने पर उन्होंने जाति पाँति के झगड़े को त्याग दिया था। अन्तः साक्ष्य के आधार पर भी सूरदास की जाति के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। कई स्थलों पर सूरदास ने ब्राह्मण शब्द का तिरस्कार रूप में प्रयोग किया है। जैसे—

बाँभन मारें नहीं भलाई।
जबहि बाँभन हरि ढिग आयौ
महाराने हैं पाँडे आयौ

इनके आधार पर कुछ लोगों का विचार है कि यदि वे ब्राह्मण होते तो ब्राह्मण शब्द का ऐसा तिरस्कृत प्रयोग न करते, किन्तु ऐसा उन्होंने केवल भक्तिहीन ब्राह्मण के लिए ही प्रयोग किया है। भक्ति में जाति की उच्चता का कोई महत्व नहीं, इसीलिए सम्भवतः वे जाति के विषय में उदासीन रहे। कुछ लोग उन्हें "साहित्य लहरी" के एक पद के आधार पर चन्दवरदाई के वंशज ब्रह्मभट्ट भी मानते हैं। यह पद प्रक्षिप्त माना जा चुका है। अतः वे ब्रह्मभट्ट नहीं थे। कुछ पदों में कवि ने कृष्ण-जन्म के आधार पर अपने को 'ढाढ़ी' और 'जगा' कहा है। यथा—

(क) हौं तो तेरे घर की ढाढ़ी, सूरदास मोहि नाऊँ।
(ख) नन्द उदै सुनि आयो हो, वृषभानु कौ जगा।

इस प्रकार उनकी जाति के सम्बन्ध में कई कल्पनायें हैं, किन्तु प्रामाणिक कोई नहीं। वे महान् भक्त थे, जाति चाहे उनकी कोई हो। अस्तु,

हम पहले कह चुके हैं कि सूरदास की महाप्रभु बल्लभाचार्य से सन् १५१० ई० के लगभग गउघाट पर भेंट हुई। श्री बल्लभ ने इनसे कुछ पद सुनने की इच्छा प्रकट की। उस समय उन्होंने निम्न दो पद सुनाये—

प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ
और पतित सब दिवस चारि के हौं जनमत ही कौ।

× × × ×

मरियत लाज सूर पतितन में, मोंहू तें को नीको ।।

तथा—

मो सम कौन कुटिल खल कामी

जेहि तनु दियो ताहि विसारयौ ऐसौ नौन हरामी ।।

× × × ×

इन पदों को सुन महाप्रभु प्रभावित तो अवश्य हुए पर उन्हें दैन्य की ये भावना रुची नहीं और कहा—"सूर होकर ऐसे क्यों घिघियाते हो कुछ भगवत् जस वर्णन करौ।" इसके पश्चात् उन्होंने सूर को पुष्टि मार्ग में दीक्षित किया तथा उन्हें श्रीकृष्ण लीला से परिचित कराया। फिर श्री बल्लभाचार्य जी उन्हें अपने साथ गोवर्धन पर श्रीनाथ जी के मन्दिर में ले गये तथा उन्हें "कीर्तन का मंडान्" सौंपा। यहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं के सहस्रावधि पद बनाये और गाये।

महाप्रभु के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी ने इस परम्परा को और अधिक विकसित किया। आठ प्रमुख कवियों का कीर्तन मंडल बना उन्होंने सूर को अष्टछाप का प्रमुख बनाया।

कहते हैं कि श्री सूरदास जी ने अकबर से भी भेंट की थी जो कि तानसेन द्वारा कराई गई।

श्री सूरदास जी को जब ज्ञात हो गया कि उनका अन्तिम समय सन्निकट है, तो ये पारसोली के चन्द्र सरोवर पर आगये और यहाँ श्रीनाथ जी की ध्वजा के सामने दण्डवत् लेट गये। उधर कीर्तन के समय जब विट्ठलनाथ जी को पता लगा कि सूर पारसोली की ओर गये हैं तो वे "राजभोग" के पश्चात् पारसोली गये। जब सूर को ज्ञात हुआ कि श्री विट्ठलनाथ आ गये तो वे गद्-गद् हो गाने लगे—

देखौ देखौ जू हरि कौ एक सुभाई।

अति गम्भीर उदार उदधि हरि, जान सिरोमनि राइ।

इसी अवसर पर चतुर्भुजदास ने सूर से कहा कि भगवन् का यश तो आपने गाया पर गुरू महाराज का नहीं गाया। यद्यपि भगवान् के यश कों ही उन्होंने गुरु यश बताया तो भी उन्होंने गाया—

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो ।

श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माँझि अँधेरो ॥

फिर गोसाईं जी ने पूछा—सूरदास जी ! चित्त की वृत्ति कहाँ है। सूर ने यह पद गाकर उत्तर दिया—

बलि बलि हौं कुमारी राधिका, नन्द सुवन जासों रति मानी ।

वे अति चतुर तुम चतुर सिरोमनि, प्रीति करी कैसे होत है छानी ॥

गोसाईं जी ने फिर पूछा—सूरदास जी ! चित्त की वृत्ति कहाँ है ? इस पर उन्होंने गाया—

खंजन नैंन सुरंग रस माते ।

अतिसय चारु विमल चंचल ये, पल पिंजरा न समाते ॥

× × × ×

सूरदास अंजन-गुन अटके, नतरु कबै उड़ि जाते ॥

इस पद को गाते ही सूरदास जी के प्राण उड़ गये, वे श्रीकृष्ण में लीन हो गये। इस प्रकार सूर की भक्ति जो आरम्भ में सेवक के व्यभाव की थी, क्रमशः संख्य, वात्सल्य और माधुर्यभाव की तन्मयता को अपनाती हुई राधा के परम भाव में समाकर परिपूर्ण हो गई ।

प्रश्न २—सूरदास की जन्मांधता के सम्बन्ध में विचार प्रकट कीजिए ।

उत्तर—श्री सूरदास के अन्धे होने की बात उनके जन्म के साथ ही सम्बद्ध की जाती है। पुष्टि-मार्गीय विद्वान् गुसाईं हरिरायजी ने उन्हें न केवल जन्मान्ध बताया है; अपितु यहाँ तक कहा है कि उनके नेत्रों के ठीकरे तक न थे, केवल भौंहें ही थीं; अतः वे सूर थे अन्धे न थे, किन्तु गोसांई हरिरायजी का उक्त कथन जनश्रुति पर ही आधारित है, उसके लिये ऐतिहासिक प्रमाण कोई नहीं। सूर जैसे श्रेष्ठ भक्त कवि के सम्बन्ध में जन्मान्ध होने की बात लोक-विश्वास और जन-श्रद्धा के लिये स्वाभाविक भी है। इसी प्रकार एक कल्पना यह भी है कि वे एक बार कुँए में गिर पड़े थे और श्रीकृष्ण ने स्वयं उनको बाँह पकड़कर निकाला था तथा सूर ने नेत्र प्राप्त होने पर भी पुनः अन्धे होने

का वरदान माँगा था। यह निश्चय है कि सूर विषयांध मनुष्य को जन्म-जन्मान्तर से भवकूप में पड़े देख व्यथित थे। स्वयं उनको परम करुणामय श्रीकृष्ण ने सम्बल देकर भवकूप से निकाला और उनका उद्धार किया। सूर की अत्युत्कट भक्ति एवं उनके द्वारा किये गये कृष्णरूप के असंख्य चित्र देख श्रद्धालुजनों के लिये यह विश्वास अनिवार्य सा हो गया है कि सूर ने श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन किये थे और उन्होंने जिन नेत्रों से श्रीकृष्ण का सौंदर्य प्रत्यक्ष कर लिया हो वह भला उस संसार को क्यों देखना चाहेगा, जिसकी निन्दा स्वयं उन्होंने की हो। अतः उनके पुनः अन्धे होने का वरदान माँगना भी स्वाभाविक ही है। वैसे भी लोग यह कैसे प्रचलित कर देते कि श्रीकृष्ण ने शेष जन्म के लिए सूर को नेत्रयुक्त कर दिया?

श्रद्धालु भक्त तो सदैव यह मानते रहेंगे कि सूर जन्म से अन्धे थे। यद्यपि

"जन्मान्धो सूरदासोऽभूत्"

ऐसा श्री प्राणनाथ भट्ट ने सूर के सम्बन्ध में कहा है, किन्तु यह धार्मिक विश्वास है और इस प्रकार के विश्वास को तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। यह ठीक है कि पुष्टिमार्गीय विद्वान् उन्हें जन्मांध ही मानने का आग्रह करते हैं और इस सम्बन्ध में गोसाई हरिराय के कथन को प्रस्तुत करते हैं किन्तु यह भक्ति माहात्म्य के अतिरिक्त ऐतिहासिक तथ्य नहीं हो सकता। उधर "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" में सूर के अन्धे होने का दो स्थानों पर उल्लेख हुआ है। एक तो वहाँ, जब आचार्य महाप्रभु से सूरदास जी की भेंट हुई। भेंट होने पर आचार्य जी ने कहा था—'सूर, कछु भगवत जस वर्णन करौ।' सूरदासजी ने विनय के पद सुनाये जिन्हें सुनकर आचार्य जी ने कहा— "सूर ह्वै कें ऐसो काहे को घिघियात हो, कछु भगवत लीला वर्णन करो," इससे इतना तो प्रतीत होता है कि सूर वल्लभाचार्य जी से मिलने से पूर्व अन्धे थे; किंतु उनके जन्मान्ध होने की बात की पुष्टि यहाँ भी नहीं होती। कुछ भी हो यह तो निर्विवाद है कि सूरदास अन्धे थे। अंतः साक्ष्य से भी इसका समर्थन होता है—

(१) रास रस रीति नहीं बरनि आवै।

यहै माँगों बार-बार, प्रभु, सूर के नयन है रहें, नरदेह पाऊँ॥

(२) सूर कहै द्विविध आँधरो बिना मोल को चेरो ।

(३) सूर कूर आँधरौ द्वार परयो गाऊँ ।

सूरदास की एक आँखि है, ताहू में कछु कानौ ।

उक्त उदाहरणों में तीन में श्री सूरदास ने स्वयं अपने को अन्धा कहा है। चौथे उदाहरण में "एक आँखि" होने का अर्थ काना नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि सूरदास के सम्बन्ध में न तो कोई इस प्रकार की जनश्रुति है एवं न किसी प्रकार की कोई भी साक्षी। सूरदास अन्धे कब हुए इस विषय में जानने का कोई भी साधन नहीं। कुछ समालोचकों ने कुछ पदों के अधार पर यह भी अर्थ लगाने की चेष्टा की है कि सूरदास वृद्धावस्था में शिथिलेन्द्रिय हो गये थे, तभी से उनकी दृष्टि भी जाती रही होगी। वे पद ये है—

(क) इत उत देखत जन्म गयौ ।
या माया झूठी के कारण दुहुँ दृग अंध भयौ ॥

× × × ×

(ख) सबैं दिन गये विषय के हेतु
तीनों पन ऐसे ही खोए, केस भये सब सेत ।
आँखिन अंध, स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत ।
गंगाजल तजि पियत कूप जल, हरितजि पूजत प्रेम ॥

किन्तु इन पदों को और इन्हीं के समान अन्य पदों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि इनमें सामान्य ढङ्ग से उस समय के जीवन का चित्रण किया है, जब मनुष्य बाल्यवस्था से वृद्धावस्था तक निरुद्देश्य जीवन बिताता था और जब उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती थीं तो वह पश्चात्ताप करता था, अस्तु हम प्राप्त प्रमाणों के आधार पर केवल इतना ही कह सकते है कि सूरदास अन्धे अवश्य थे, किन्तु वे किस अवस्था में अन्धे हुए यह नहीं कहा जा सकता है। उनके जन्मान्ध होने की बात प्रमाणों द्वारा पुष्ट नहीं क्योंकि ऐसा करने से अपने विश्वास को तर्क और युक्ति की सीमा से बाहर ले जाना होगा। रूप और रंगों का वह सौंदर्य पूर्ण संसार जिसकी सृष्टि सूर ने अपने काव्य में की है, एक बार प्रत्यक्ष देखे बिना इतना यथार्थ रूप में कैसे चित्रित किया जा सकता था ?

प्रश्न ३ —सूरदास जी की रचनाओं पर तथा विषय की दृष्टि से विचार कीजिये।

सूरदास जी की रचनाओं की प्रामाणिकता पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।

उत्तर—नागरी प्रचारणी सभा काशी की खोज की रिपोर्ट के अनुसार सूरदास के १६ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। जिनके नाम इस प्रकारसे हैं— १—सूरसारावली, २—साहित्य लहरी, ३—सूरसागर, ४—गोबर्धन लीला बड़ी, ५—दशम् स्कन्ध टीका, ३—नागलीला, ७—पद संग्रह, ८—प्राण प्यारी, ९—ब्याहलो, १०—भागवत् भाषा, ११—सूर पचीसी, १ —सूरदास के स्फुट पद १३—सूरसागर सार, १४—एकादशीमहात्म्य, १५—रामजन्म, १६—नल-दमयन्ती।

ये सभी ग्रन्थ सूरदास के नहीं हो सकते, क्योंकि इनमें से कुछ में सूरदास की प्रियशैली और विषय की भिन्नता है। इनमें से कई तो सूरसागर के ही कुछ पदों के संग्रह-मात्र हैं। भक्तों ने अपनी सुविधानुसार उन्हें अलग कर रक्खा है। गोवर्धनलीला बड़ी, दशम्स्कन्ध टीका नागलीला, भागवत आदि तो सूरसागर के ही भाग हैं। डा० जनार्दन मिश्र ने अपनी पुस्तक सूरसागर के उन पदों को प्रक्षिप्त माना है जो कि सूरदास है और सूरश्याम के नाम से आए हैं। यदि यह ठीक मान लिया जाय तो जो ग्रंथ सूरजदास के नाम से मिलते हैं उन्हें सूरदास का कतई नहीं कहा जायेगा। वे ग्रन्थ दो हैं-एकादशी महात्म्य और राम जन्म। इसके अतिरिक्त नल-दमयन्ती तथा व्याहलो भी सूरदास के ही कहे जाते हैं, किन्तु डा० मोतीचन्द नल-दमयन्ती को—सूर का नहीं मानते। व्याहलो के विषय में भी अभी कोई निर्णय नहीं हो सका है।

अब सूरदास जी के तीन ही ग्रन्थ शेष रह जाते हैं। सूरसागर, सूरसारावली और साहित्यलहरी। इन तीनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ये ग्रन्थ वास्तव में तीन नहीं हैं।

सूरसारावली—सूरसारावली जैसे कि उनके नाम से ही पता चलता है कि वह स्वतंत्र ग्रन्थ न होकर सूरसागर की अनुक्रमणिका है। सम्भव है कि स्वयं सूरदास ने इन पदों की रचना की हो और इन्हें सूरसागर की भूमिका

स्वरूप रख दिया हो, किन्तु यदि सारावली और सूरसागर की तुलना सूक्ष्म रूप से तथा विस्तारपूर्वक की जाय तो उसमें ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे जो सूरसागर में नहीं हैं। इससे कुछ लोगों को इसके सूरकृत होने में सन्देह है। इसमें कृष्ण की संयोग लीला, वसन्त हिंडोला, और होली आदि के प्रसंग कृष्ण के कुरुक्षेत्र से लौटने के बाद लिखे गये है। इसी ग्रन्थ में सूर के एक लक्ष पद लिखने की बात भी कही गयी है। "ता दिन ते हरि लीला गाई, एक लक्ष पद वन्द।" अभी इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता संदिग्ध है।

साहित्य लहरी—यह भी सूरसागर का एक अंश सा जान पड़ती है। इसमें सूरसागर के वे पद हैं जिनमें अपेक्षाकृत पाण्डित्य अधिक है। वास्तव में यह एक शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमें नायिका भेद, अलंकार, रस निरूपण आदि के उदाहरण स्वरूप बहुत से पद उपस्थित किये गये हैं। इसमें अनेक पद दृष्ट-कूट के भी हैं ऐसे ही कुछ दृष्ट-कूट के पद सूरसागर में भी हैं। कुछ ऐसे भी पद हैं जो सूरसागर में नहीं मिलते। कृष्ण की बाल-लीला से सम्बन्ध रखने वाले भी बहुत से पद हैं। महाभारत की कथा के भी कुछ प्रसंग इसमें आ गये हैं।

सूरसागर—सूरदास का प्रामाणिक ग्रंथ वास्तव में यही है अन्य ग्रन्थ तो इस वृहत् ग्रन्थ की छाया-मात्र हैं। यह एक ग्रन्थ नहीं वास्तव में कई ग्रंथों का संग्रह है। इसके पूर्वार्द्ध ही में (१) विनय, वैराग्य, सत्संग, गुरु-महिमा सम्बन्धी मौलिक पद (२) बाल-लीला (३) प्रेम-लीला (४) दान-लीला (५) छोटी मानलीला, (६) मानलीला, (७) विरहलीला, (८) दो भ्रमरगीत तथा (९) श्रीमदभागवत कथा का अनुवाद है। इसके उत्तरार्ध में नन्द-यशोदा एवं राधा-माधव मिलन सम्बन्धी मौलिक पद मिलते हैं। यह विभाजन दशम् स्कन्ध के अनुसार हैं। इसके अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि यह प्रबन्ध काव्य नहीं। इसमें प्रसंगानुसार कृष्ण लीला सम्बन्धी भिन्न-भिन्न पद संग्रहीत है। इसमें श्रीकृष्ण का प्रेममय स्वरूप का चित्रण किया गया है। महाभारत के कर्मयोगी एवं राजनीतिज्ञ कृष्ण का नहीं। इसका कारण यह है कि सूरदासजी पुष्टिमार्गी थे और उन्होंने कृष्ण का प्रथम रूप ही चित्रित किया है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल भी अनिश्चित है। विद्वानों ने

इसका रचना-काल सं० १५७६-१६०७ माना है। इसमें कुल बारह स्कन्ध हैं। कुछ लोग इसमें बारह स्कन्ध देखकर इसे भागवत् का अनुवाद कहते हैं, पर यह ठीक नहीं, क्योंकि समस्त भागवत की कथाओं का समावेश उसमें नहीं हुआ; फिर भी हमें इस विषय पर सूरसागर में सूरदास जी का निम्न कथन मिलता है :

व्यास कहे शुकदेव सों द्वादश स्कन्ध-बनाइ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ॥

इस उल्लेख से यह जान पड़ता है कि सूरदास ने द्वादस स्कन्ध पर्यन्त की कथाओं को, जो व्यास जी द्वारा कही गई हैं, गाया है।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि सूरसागर में १२ स्कन्ध हैं। भिन्न-भिन्न स्कन्धों में विभिन्न कथायें हैं। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण दशमस्कन्ध है। यह सूरसागर का प्राण है। इसमें कृष्ण-जन्म से लेकर मथुरा-गमन तक की कथा है। भागवत से बहुत कुछ साम्य होने पर भी सूर की मौलिकता के दर्शन इसी स्कन्ध में होते हैं।

समस्त सूरसागर में प्रथम स्कन्ध के विनय सम्बन्धी पद, तथा दशम् स्कंध या अन्य स्कन्धों मे आए हुए भक्ति और गुरु महिमा आदि विषयों से सम्बद्ध पद ही मौलिक कहे जा सकते हैं।

प्रश्न ४—क्या सूरसागर भागवत का अनुवाद है? सप्रमाण बताइये, साथ ही सूर की मौलिकता का निर्देश भी कीजिये?

उत्तर—प्राचीन काल से ही लोगों ने सूरसागर को भागवत् का अनुवाद समझ रखा है। इस धारणा की पुष्टि इस प्रकार होती है, कि भागवत में बारह स्कन्ध हैं और सूरसागर में भी बारह ही स्कन्ध हैं। भिन्न-भिन्न स्कन्धों की कथाओं में भी समानता है। अन्तःसाक्ष्य से तो यह बात भी स्पष्ट हो जाती है। श्री सूरदास जी ने स्वयं कहा है—

श्रीमुख चारि श्लोक दिये, ब्रह्मा को समुझाई।
ब्रह्मा नारद सों कहे, नारद व्यास सुनाई॥

व्यास कहे शुकदेव सों, द्वादस स्कन्ध बनाई।
सूरदास सोई कहै, पद भाषा करिगाई ॥
जैसे शुक को व्यास पढ़ायो।
सूरदास तैसे कहि गायो ॥
× × ×
सूर कह्यौ भागवत् अनुसार
× × ×
सूर कहै भागवत् अनुसार ॥

सूरदासजी के अपने मुख से भी ऐसे वचन कहे जाने पर सूरसागर व भागवत् का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि सूरसागर भागवत् का अनुवाद या भावानुवाद नहीं, किन्तु कवि की अपनी स्वतन्त्र रचना है। सूरसागर के स्कन्धों में पद-संख्या देखने से प्रतीत होता है कि उसमें केवल दशम् स्कन्ध पूर्वार्ध की प्रधानता है अर्थात् दशम् स्कन्ध पूर्वार्ध की कथा तो भागवत् व सूरसागर दोनों में विस्तार से कही गई है, परन्तु जहां भागवत में अन्य स्कन्धों की कथाएँ भी विस्तार-पूर्वक हैं, वहाँ सूरसागर में उन कथाओं को बहुत थोड़े पदों में समाप्त कर दिया गया है। भागवत के श्लोकों और सूरसागर के पदों की संख्या का मिलान करने से भी यह बात और स्पष्ट हो जाती है। सूरसागर में दशम् स्कन्ध के बाद संख्या में प्रथम व नवम् स्कन्ध ही बड़े हैं। शेष स्कंधों की संख्या कुल मिलाकर १०६ है, जोकि नवम् स्कन्ध की संख्या से भी कम है, पर भागवत के श्लोकों की संख्या में इतनी विषमता नहीं। इस तुलना से अनुमान लगाया जा सकता है कि यदि वास्तव में सूरसागर भागवत का अनुवाद है तो भी सूरदास ने दशम् स्कन्ध की कथा छोड़कर अन्य स्कन्धों की कथाओं को भागवत की तुलना में बहुत संक्षेप से लिखा है।

भागवत का मुख्य विषय भगवान विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है। इसके द्वारा भागवतकार भगवान की अपरिमित शक्ति दिखाना चाहते हैं। दशमस्कन्ध के अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से यह पता चलता है कि कृष्णावतार पर उनका विशेष मोह है। भागवतकार ने विष्णु के समस्त अवतारों में राम व कृष्ण के अवतार को प्रमुख माना है। अन्य अवतारों की कथा भी कही गई

है। यद्यपि सूरसागर में भी अवतारों के उपस्थित करने का वही क्रम है जो भागवत में है, तथापि राम व कृष्ण अवतारों के अतिरिक्त अन्य अवतारों का उल्लेख नाममात्र के लिए ही किया गया है। रामावतार की कथा सूरसागर में भागवत की अपेक्षा अधिक विशद् रूप से वर्णन की गई है। दशन् स्कन्ध के उत्तरार्ध की कथायें दोनों में बहुत कुछ मिल जाती है, किन्तु सूरसागर में यह कथा केवल १३८ पदों में बहुत संक्षेप से कही गई है और भागवत में यही कथा ४१ अध्यायों में कही गई है। भागवत में ऐसे अनेक मनोहारी स्थल नहीं हैं जो सूरदासजी की मौलिक कल्पना है। सूरसागर का प्रायः सारा विस्तार दशम् स्कन्ध पूर्वार्द्ध में समाप्त हो जाता है।

इस तुलना से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सूरसागर का सबसे महत्व-पूर्ण भाग दशम् स्कन्ध पूर्वार्द्ध है। इसमें कृष्ण के जन्म से लेकर उनके मथुरा जाने और वहाँ से उद्धव को व्रज भेजने और गोपियों का समाचार जानने तक की कथा है, परन्तु यह पहले भी कहा जा चुका है कि इस भाग में कृष्ण का जो चित्रण हुआ है वह भी भागवत के इस भाग से बहुत भिन्न है। भागवत के कृष्ण शक्तिशाली हैं। स्थान-स्थान पर उनका वही रूप दिखाने का प्रयत्न किया गया है, उसमें कृष्ण की अलौकिक लीलायें ही अधिक हैं, लौकिक कम।

वैसे भी सूरसागर को भागवत का अविकल अनुवाद नहीं कहा जा सकता यह एक स्वतंत्र रचना है। 'बालिका राधा' के बालक कृष्ण के राधा के साथ खेलने के प्रसङ्ग और भ्रमरगीत की व्यंग्यमयी उक्तियाँ भागवत में ढूड़ने पर भी नहीं मिलेंगी। भागवत में उद्धव की कथा आती है पर उनके गोकुल पहुँचने पर गोपियाँ उन्हें चिढ़ाती नहीं। वे जो कुछ कहते हैं गोपियाँ चुपचाप सुन लेती हैं। उद्धव द्वारा कृष्ण का सन्देश पाकर उनकी विरह व्यथा शान्त हो जाती है। भागवत में कृष्ण के प्रति दिये गये उनके उलाहने भी उतने तीव्र नहीं, जितने कि सूरसागर में हैं। निर्गुण तथा सगुण का झमेला भी भाग-वत में दिखाई नहीं देता, जो सूरसागर के भ्रमरगीत का प्रधान अङ्ग है। इसके अतिरिक्त भागवत सर्ग, प्रति सर्ग आदि विषयों का वर्णन करता हुआ भक्ति को मूर्द्धन्य बना देता हैं, पर सूरसागर में मुख्य रूप से राधा-कृष्ण लीला को ही प्रधानता दी गई है।

जो हो हम कह चुके हैं कि सूरसागर भागवत का अविकल अनुवाद नहीं। उसे स्वतन्त्र अनुवाद भी नहीं कहा जा सकता। सूरसागर के कुछ स्कंधों में विशेषकर पहले और दूसरे में सूरदास ने माया, भक्ति, गुरु-महिमा आदि प्रसङ्ग अपनी ओर से जोड़ दिए हैं। इनके अतिरिक्त सूरसागर में मङ्गलाचरण व प्रस्तावना को कोई स्थान नहीं। यहाँ तक कि वे भी पद इसमें हैं जो उन्होंने आचार्य महाप्रभु के मिलने के पूर्व लिखे थे। इसके अतिरिक्त सूरसागर में अनेक स्थानों में एक ही कथा की पुनरुक्ति भी है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सूरदास जी ने भागवत का आधार केवल आँशिक रूप में कथा प्रसंगों के मूल रूप में लिया है। हाँ, दशम् स्कन्ध पूर्वार्द्ध के अतिरिक्त उन्होंने अन्य स्कन्धों में अवश्य ही भागवत का आधार लिया है—अनुवाद वहँ भी नहीं है। वैसे श्रीमद्भागवत का उसमें इतना ही आधार लिया गया है, जितना कृष्ण की ब्रज-लीला की रूपरेखा बनाने के लिए आवश्यक था। इसके अतिरिक्त उसमें—ऊपर कहे गए विवरण के अनुसार अनेक नवीन प्रसङ्गों की अवतरणा है तथा उसकी प्रकृति भावना समन्वित काव्य की है, न कि पुराण रचना की। अतः उसमें भागवत के कितने ही प्रसङ्ग विवरण और सिद्धान्त छोड़ दिये गये हैं। भागवत का आधार लेते हुए भी यह कृति सूर की मौलिकता प्रमाणित करती है।

अन्त में यह कहना भी आवश्यक है कि सूरसागर के मौलिक व महत्व-पूर्ण भाग प्रथम स्कंध के वे पद हैं जो कि विनय के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा सम्पूर्ण दशम् स्कन्ध पूर्वार्द्ध एवं अन्य स्कन्धों में बिखरे हुए भक्ति, गुरु-महिमा आदि विषयों के पद हैं। वास्तव में ये ही अंश सूरसागर के प्रधान अङ्ग कहे जा सकते हैं जो मौलिकता, रसात्मकता और भक्ति-भावना की विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

प्रश्न ५—साहित्य-लहरी के विषय का विश्लेषण करते हुये सिद्ध कीजिए कि वह सूर की ही रचना है।

उत्तर—सूरदासजी की तीन प्रमुख रचनाओं में से एक साहित्य-लहरी भी है। अनेक विद्वान् उसको सूरदास के दृष्टकूट पदों का संग्रह मानते हैं पर उपसंहार के पदों को छोड़कर साहित्य-लह ी का शेष सम्पूर्ण भाग स्वतन्त्र रचना ही है। इसके विषय सूरसागर से भिन्न हैं। साहित्य-लहरी के विषयों में भी कोई तारतम्य नहीं दिखाई देता। उसमें कृ ण की बाललीला से सम्बन्ध रखने वाले पद भी हैं और नायिका भेद के रूप में राधिका के मान आदि का भी वर्णन है। उसमें वियोगिनी प्रोषितपतिका का भी वर्णन है और संयोगिनी ि लासवती स्त्री का भी। इसी प्रकार स्वकीया, परकीया, मुग्धा, प्रौढ़ा, धी ा, ज्येष्ठा, विदग्धा आदि नायिकाओं का भी वर्णन पाया जाता है। इसी के साथ साथ दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, प्रस्तुत आदि अलंकारों का भी विलष्ट शब्दों में जानबूझकर उल्लेख किया गया था। पद संख्या ७४-७५ में महाभारत की कथा के कुछ प्रसंग भी आये हैं।

साहित्य-लहरी के पद दृष्टकूट कहलाते हैं। दृष्टकूटों में यमक, श्लेष, रूपकांतिशयोक्ति आदि अलङ्कारों का प्रयोग है, जिससे अर्थबोध में कठिनाई आती है। इसके अतिरिक्त इनमें कुछ ऐसे भी शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो साहित्य में विशेष अर्थों में रूढ़ हो गए हैं। जैसे—दधिसु ा का अर्थ चन्द्रमा, और शैलतनया का अर्थ पार्वती है। साहित्यलहरी के दृष्टकूटों में यमक का एक उदाहरण देखिए—

सारङ्ग समकर नीक-नीक सम सारङ्ग सरस बखानै।
सारङ्ग बस भय, भय बस सारङ्ग, विषमै मानै॥

इस प्रकार साहित्य-लहरी में साहित्य-प्रणयन ही अधिक है। उसके प्रत्येक पद में किसी न किसी अलङ्कार का निर्देश अवश्य है। अलङ्कारों की यह परिपाटी हिन्दी में चन्दवरदाई से ही चल पड़ी थी। महापात्र विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण से रस-भेद के साथ नायिकाभेद भी प्रारम्भ हो गया है। साहित्य-लहरी में ये दोनों बातें विद्यमान हैं। गुह्य बातों को दृष्टकूटों के रूप में प्रकट करने की प्रणाली भी पुरानी है। विद्यापति की पदावली में भी दृष्टकूट हैं।

सूर की सभी रचना माधुर्य-रस-प्रधान है। यह गोपनीय रस है। साधारण जनता में पहुँचकर यह भी तन्त्रसम्प्रदाय की भाँति अनाचार का प्रसार कर सकता है। अतः माधुर्य रसमयी रचना सर्वसाधारण के लिए अहित कर सिद्ध न हो, इसके लिए आचार्यों ने कहीं-कहीं उसको दृष्टकूटों का वेष पहना दिया है। सामान्य पाठक रचनाओं का अर्थ नहीं समझेंगे, फिर अनाचार की सृष्टि कैसी ? केवल अधिकारी व्यक्ति इसे समझ सकते हैं और वे ही अलौकिक रस का आस्वादन भी कर सकते हैं।

कुछ लोग जिनमें डा० ब्रजेश्वर वर्मा प्रमुख हैं—साहित्य-लहरी को सूर की रचना नहीं मानते। इस विषय में उनके मुख्य तर्क हैं, कि—

१—सूरदास जैसे विरक्त महात्मा व सिद्ध कोटि के ज्ञानी भक्त को अपनी पूर्ण वयोवृद्ध अवस्था में इस प्रकार के काव्य-साहित्य के आश्रय लेने की क्या आवश्यकता थी ?

२—जब इसमें राधा के नख-शिख का वर्णन नहीं, तब इसे दृष्टिकूट शैली में रचने की क्या आवश्यकता थी ?

३—सूरसागर आदि वृहत् ग्रन्थ में जब उन्होंने रचना-काल ही नहीं लिखा, तब ऐसे एक असफल प्रयत्न में सम्वत् आदि देने की क्या आवश्यकता हुई ?

इन तीनों प्रश्नों पर विचार करते समय हमको पुष्टिसम्प्रदाय की भक्ति-प्रणाली तथा उसके सिद्धान्त को जान लेना आवश्यक है। पुष्टि सम्प्रदाय में भगवान् को श्रुति के प्रमाण—"रसो वैसः"—के अनुसार रसात्मक माना गया है एवं ब्रह्माण्ड में जहाँ कहीं भी आनन्दरस की अभि-व्यक्ति है, उसे भगवद् रूप ही माना गया है। श्री शुकदेवजी ने भागवत में कहा है कि "सर्वाः शरत्काव्य कथा रसाश्रयाः" अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी लीलाएँ काव्य शास्त्रोक्त प्रकार से भी की हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भी अपनी सुबोधिनी पुस्तक में उक्त पद्यांश का यही अर्थ किया है। सूरदास जी ने भी भागवत् के उक्त श्लोक के स्पष्टीकरण एवं विशदीकरण में ही समस्त साहित्यलहरी का निर्माण किया है। अतएव इसमें नायिका भेद का स्पष्ट उल्लेख हुआ।

इस पुस्तक का नाम साहित्य का सूचक है फिर भी यह भक्ति की उच्चतम

भावनाओं से अनुप्राणित है। इससे कवि का उद्देश्य केवल भगवान् की रहस्य-मय लीलाओं का गान मात्र करना था, साहित्यिक नेतृत्व नहीं। दूसरी बात यह है कि इन पदों में काव्योक्त कृष्ण लीलाएँ होने से उन्हें गूढ़ रखना आवश्यक था, अतः इनमें प्राप्त नायिकाओं के उल्लेखों में भी कुछ गूढ़ता लाई गई है जिसके कारण नख-शिख वर्णन न होते हुए भी इसमें दृष्टिकूट शैली की नितान्त आवश्यकता थी।

डा० वर्मा का साहित्य-लहरी को सूरदास की रचना न मानने के कारण का उत्तर यह है कि—श्रीमद्‌भागवत् की कथाओं का अनुवादात्मक सूरसागर सूरदास की परतन्त्र रचना है। इसमें किसी न किसी अंश में भागवत् की कथाओं का अनुसरण है। अतः यह स्वतन्त्र रचना नहीं है। फिर इस रचना के अनन्तर ही इसके तत्व रूप से सूरदास ने सूरसारावली की सैद्धान्तिक रचना की थी। इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अपनी ६७ वर्ष की आयु का उल्लेख कर दिया है—

"गुरु प्रसाद होत यह दरशन सरसठ बरष प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन तउ पार नहिं लीन॥"

इसमें सूरसागर का भी रचना-काल जाना जा सकता है।

डा० वर्मा ने एक आपत्ति और भी उठाई है कि चौरासी वार्ताओं में साहित्यलहरी का कोई उल्लेख नहीं। इसीलिए भी हम इसे सूर की रचना नहीं मानते। किन्तु यदि वार्ताओं का गम्भीर अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि समस्त वार्ता-साहित्य कथा प्रसंग के रूप से कहा गया है, ऐतिहासिक शैली से नहीं। अतः यदि उसमें साहित्यलहरी का नाम नहीं आया तो उसको हम अप्रमाणिक नहीं कहेंगे। इसके विपरीत साहित्यलहरी की दृष्ट-कूट शैली और सूरसागर की दृष्टकूट शैली, वर्ण-विषय व भाषा आदि की दृष्टि से सूरसागर से मिलती है। कुछ उदाहरण देखिए—

(क) ग्रह नक्षत्र अस वेद अरध करि, खात हरष मन बाढ़ौ॥

—साहित्यलहरी

ग्रह नक्षत्र अरु वेद अरध करि, को बरजै हमें खात॥

—सूरसागर

(ख) जबतें हौं हरि रूप निहारो ।
तबते कहा कहौं री सजनी; लागत जग अँधियारो ॥
—साहित्यलहरी

जबते सुन्दर बदन निहारो ।
ता दिन ते मधुकर मन अटक्यो बहुत करी निकरै न निकारो ॥
—सूरसागर

(ग) पिय बिन बहत बैरिन बाव ।
मदन बान कमान लायो करपि कोष चिढ़ाय ॥
—साहित्यलहरी

पिय बिनु नागिनि कारी रात ।
कबहुँक जामिनी होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात ॥
—सूरसागर

साहित्यलहरी व सूरसागर के पद साम्य व भाव-साम्य के ये उदाहरण सिद्ध करते हैं कि ये दोनों रचनायें एक ही कवि की हैं। उक्त विवेचन से अब यह स्पष्ट होगया है कि साहित्यलहरी के लेखक भी महाकवि सूरदास जी ही हैं। इसके विषय में अन्यथा सम्भावना नहीं की जा सकती।

× × ×

प्रश्न ६—भ्रमरगीत के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए सूर के भ्रमर गीत पर विद्वता पूर्ण लेख लिखिए ।

उत्तर—भ्रमरगीत सूरसागर का सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। उससे काव्य और दार्शनिक दोनों पक्षों की पुष्टि होती है। काव्य और रस की दृष्टि से सूर-सागर का यह अंश-व्यंजना, माधुर्य और वियोग शृंगार का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

भ्रमरगीत प्रसंग के सर्वप्रथम दर्शन हमें श्रीमद्भागवत में होते हैं। उसके अनन्तर वह इस प्रकार है कि श्रीकृष्ण कंस के निमन्त्रण पर अक्रूर जी के साथ मथुरा चले गए। वहाँ कंस को मार कर उन्होंने अपने पिता वसुदेव का उद्धार किया। उनको मथुरा में आए काफी दिन हो गए, वे अवधि बीत जाने पर भी गोकुल न गए। इसी बीच कंस की कुब्जा नाम की एक दासी को कृष्ण

ने उसकी सेवा से प्रसन्न हो अपने प्रेम की अधिकारिणी बनाया। तब नन्द, यशोदा आदि बहुत दुखी हुए। उन गोपियों का तो कहना ही क्या जिनके साथ उन्होंने इतनी लीलाएँ की थीं। बहुत दिन बाद श्रीकृष्ण ने ज्ञानोपदेश द्वारा गोपियों को समझाने बुझाने के लिए अपने सखा उद्धव को ब्रज में भेजा। उद्धव को ही क्यों भेजा? इसका कारण यह था कि उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था। कृष्ण का उनको गोपियों के पास भेजने का यह अभिप्राय था कि वे उनकी प्रीति की गूढ़ता और तन्मयता देखकर शिक्षा ग्रहण करें और सगुण भक्ति मार्ग की सरसता और सुगमता के सामने उनका ज्ञान का गर्व दूर हो :—

जदुपति जानि उद्धव रीति।
जेहि प्रगट निज सखा कहियत करन भाव अनीति॥
बिरह दुख जहँ नाहिं जामत नाहिं उपजत प्रेम।
रेखरूप न बरन जाके यह धरयो वह नेम॥
त्रिगुण तन करि लखत हमको, ब्रह्म मानत और।
बिना गुण क्यों पुहुमि उधरै यह करत मन डौर।
बिरह रस के मंत्र कहिए क्यों जलै संसार॥
कुछ कहत यह एक प्रकटत, अति भरयौ हंकार।
प्रेम भजन न नेकु याके, जाय क्यों समझाय?
सूर प्रभु मन यहै आनी, ब्रजहि देहुँ पठाय॥

"त्रिगुण तनकर लखत हमको, ब्रह्म मानत और," श्रीकृष्ण इसी भ्रम का निवारण करना चाहते थे। उद्धव बात-बात में "एक प्रगटत"—अद्वैतवाद का राग अलापते थे; पर "विरह-रस के मन्त्र कहिए क्यों जलै संसार?"-रस-रहित उपदेश से संसार भला कैसे चल सकता है? बिना रस के उपदेश कोई भी प्रभाव नहीं डाल सकते। यही दिखाने के लिए भ्रमर गीत की रचना हुई है।

उद्धव ब्रज में आए, उनके आते ही सारे ब्रजवासियों ने उन्हें घेर लिया। वे नन्द यशोदा से संदेश कह चुकने के अनन्तर गोपियों की ओर फिर कर कृष्ण के संदेश के रूप में चर्चा छेड़ते हैं। इसी बीच में एक भौंरा उड़ता-उड़ता गोपियों के पास आकर गुनगुनाने लगता है, तो गोपियाँ उसी

भ्रमर को सम्बोधित करके जो मन में आता है कहती हैं।

"पूछन लागीं ताहि गोपिका 'कुब्जा तोहि पठायो'।
कैधों सूर श्याम सुन्दर को हमें संदेशों लायो ?"

इसीसे इस प्रसंग का नाम भ्रमरगीत पड़ा है। उद्धव उनके प्रेम भरे उलाहनों को सुनता है और तब उसका ज्ञान का गर्व नष्ट हो जाता है—वह विराग को तूमड़ी में प्रेम का रस भर लेता है।

सूरदासजी ने तीन भ्रमरगीत लिखे हैं। एक भ्रमरगीत तो भागवत का अनुवाद है, किन्तु उसमें ज्ञान वैराग्य की चर्चा होते हुए भी अन्त में भक्ति की विजय दिखाई है। यह भ्रमरगीत चौपाई छन्दों में है। अन्य दो पदों में हैं। इन प्रथम दो भ्रमर गीतों में भ्रमर के आने का कहीं भी वर्णन नहीं, केवल मधुकर नाम से ही उद्धव को उपालम्भ दिया गया है। तीसरा भ्रमरगीत ही सब में श्रेष्ट है। इसमें भौंरा भी आता है और तब गोपियाँ उसे लक्ष्य कर कृष्ण व उद्धव को खरी-खोटी सुनाती हैं।

भागवत् में भी भक्ति की महिमा अवश्य गाई गई है पर ज्ञान के विरुद्ध एक भी शब्द नहीं कहा गया। वहाँ भगवान् का सन्देश सुन गोपियों को शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ और वे उसी में लीन हो गईं। भ्रमरगीत में भक्ति पर ज्ञान की विजय दिखाई है; किन्तु सूरदास की समस्त भ्रमरगीत की धारा सगुणोपासना की ओर ही प्रवाहित हो रही है। गोपियाँ कहती हैं—

सूरदास या निर्गुण सिन्धुहि कौन सकै अवगाहि।

× × ×

मुक्ति रहो घर बैठ आपने। निर्गुण सुनत दुख पैये।

× × ×

कौन काज या निर्गुण सों चिरजीवहु कान्ह हमारे।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि भागवत् के भ्रमरगीत में कहीं भी गोपियों को व्यंग्यार्थ के प्रयोग करने का अवसर नहीं मिला। सूरदास इस दृष्टि से मौलिक हैं। उन्होंने इसके लिये कंस के दरबार में विद्यमान कुब्जा को चुना है।

इस प्रकार सूर के भ्रमरगीत से स्पष्ट मालूम देता है कि वे निर्गुण की अपेक्षा सगुण का महत्व प्रतिपादित करना चाहते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि सूर ज्ञान-मार्ग से अनभिज्ञ थे। उन्होंने निराकार ईश्वर की महत्ता "अविगति गति कछु कहत न आवै" या "अविगत गति जानी न परै" कहकर स्वीकार की है। भ्रमरगीत में सूरदास जी ने ज्ञान को निस्सार बताने की चेष्टा की है और उसके लिए आधार बनाया है गोपियों को।

इतना जान लेने के बाद हम थोड़ा या सूर के इस परमोत्कृष्ट उपालम्भ काव्य का कुछ रसास्वादन भी करेंगे। उद्धव गोकुल आये और उन्हें देखते ही गोपियों को कृष्ण मिलन, का सा सुख हुआ—

ऊधो ! पा लागों भले आये।
तुम देखे जनु माधव देखे, तुम त्रयताप नसाये ॥

प्रिय के सम्बन्ध से बहुत सी बातें प्रिय लगती हैं, यही बात स्वाभाविक रूप में उक्त पद में दिखाई है। उद्धव के हाथ से श्याम की पत्री राधा अपने हाथ में लेती है और—

"निरखत अङ्क श्यामसुन्दर के बार बार लावति छाती।"

फिर गोपियां कहती हैं—

संदेसन मधुवन कूप भरे।
जो कोई पथिक गये हैं ह्यां ते फिर नहीं गवन करे।
कै वे श्याम सिखाय समोधे, कै वे बीच भरे ?
अपने नहिं पठवत नन्दनन्दन हमरेउ धरे।
मसि खूँटी, कागद जल भीजे, शरदव लागि जरे।

गोपियों की झल्लाहट है कि जो भी यहाँ से संदेशा लेकर गया वह कोई लौटा ही नहीं। कृष्ण की कोई चिट्ठी भी तो नहीं आती। मथुरा की सारी स्याही सूख गई है, कागज भीग गया है और कलम भी जल गई ?:-

ज्यों ही उद्धव अपनी ज्ञान की बातें कहना आरम्भ करते हैं त्योंहीं गोपियाँ विषयान्तर होने से सकपका कर पूछती हैं :—

हमसों कहत कौन सी बातें ?
सुनि, ऊधौ हम समझति नाहीं, फिर फिर बूझति तातें।

फिर वे उद्धव को बनाने लगती हैं, उनसे परिहास करती हैं और कहती हैं-

ऊधो ! जान्यो ज्ञान तिहारो ।
जाने कहा राजगति लीला अन्त अहीर बिचारो ।
आवत नाँहि लाज के मारे, मानहु कान्ह खिसान्यो ।
हम सबै अयानी, एक सयानी कुब्जा सों मन मान्यो ।
ऊधो जाहु बाँह धरि ल्याओ सुन्दर श्याम पियारो ।
व्याहौ लाख, धरौ दस कुंजरी, अतहि कान्ह हमारो ॥

उद्धव अपनी बात कहते जाते हैं, पर गोपियाँ विश्वास ही नहीं करतीं कि यह श्याम का सन्देश है । वे उससे कहती हैं—

"ऊधो ! जाय बहुरि सुनि आवहु कहा कह्यो है नन्द कुमार ।
यह न होव उपदेश स्याम को कहत लगावन छार ॥"

कभी कहती हैं—

श्याम तुम्हें ह्याँ नहीं पठाये तुम हो बीच भुलाने ।

फिर कहतीं हैं—

मधुकर जाने है सब कोऊ ।
जैसे तुम औ मीत तुम्हारे, गुननि निपुन हौ दोऊ ।
पाके चोर हृदय के कपटी, तुम कारे औ वोऊ ॥

गोपियाँ उद्धव को कभी भोला सा व्यक्ति समझकर अनुमान करती हैं कि कृष्ण ने इनके हाथ सन्देशा भेज हँसी न की हो । अतः वे पूछती हैं—

ऊधो ! जाहु तुम्हें हम जाने ।

× × ×

साँच कहो तुमको अपनीं सों बूझति बात निदाने ।
सूर श्याम तुम्हें पठाये तब नैकहु मुस्काने ?

उद्धव सच बताओ जब कृष्ण ने तुहें भेजा तब क्या वे थोड़ा-सा मुस्काये थे ? (भाव यह है कि तुम कहीं बुद्धू तो नहीं बनाये गये ?)

गोपियाँ उद्धव के ज्ञान की कद्र भी करती हैं ।

कुछ लोग ऐसी वस्तु ढोए फिरते हैं, जिसे बहुत से लोग निकम्मी समझते हैं । वे उसे बेवकूफ समझकर ही नहीं रह जाते, अपितु उसे बनाने में

भी कभी पूरी कल्पना खर्च करते हैं। बेवकूफी पर हसने की प्रथा पुरानी है। लोग बना बनाया बेवकूफ पा हँसते भी हैं और हंसने के लिए बेवकूफ बनाते भी हैं। हास की प्रेरणा ही कल्पना को मूर्ख का स्वरूप जोड़ने और वाणी को कुछ शक रचना करने में तत्पर करती है। गोपियाँ कुछ इसी प्रेरणावश उद्धव से निम्नलिखित बात उस समय कहती हैं, जब वे घबराकर उठने को तैयार होते हैं—

ऊधो ! जोग बिसरि जनि जाहू।
बाँधहु गाँठ, कहूँ जनि छूटै, फिर पाछे पछिताहू ॥
ऐसी वस्तु अनूपम मधुकर ! मरम न जाने और।
ब्रजवासिन के नाहिं काम की तुम्हारे ही है ठौर ॥

कभी-कभी गोपियों की चित्तवृत्ति अत्यन्त मलीन हो जाती है और वे कहती हैं—

ऊधो ! हम हैं तुम्हारी दासी।
काहे को कटु वचन कहत हो करत आपनी हाँसी ॥

कभी वे अपने दुख का वर्णन करती हैं—

बिनु गोपाल बैरिनि भई कुंजें।
तब ये लता लगति अति शीतल, अब यह विषम ज्वाल की पुजें।

जब वे अपना दुख कहते थक जाती हैं तो गौओं व नन्द यसोदा के दुःख का वर्णन करती हैं—

ऊधो ! इतनी कहिये जाय।
अति कृश गात भई ये तुम बिनु परम दुखारी गाय ॥
जल समूह बरसति दोउ नैना हूँकति लीन्हें नाँव।
जहाँ-जहाँ गो दोहन कीन्हों सूँघति सोई ठाँव ॥

कभी राधा सोचती हैं मैंने कृष्ण को देखकर एक दिन मान किया था, शायद उसी से वे नाराज हो गये हों—

मेरे मन इतनी सूल रही।
वे बतियाँ छतियाँ लिख राखी जे नन्दलाल कहीं ॥

गोपियों के हृदय को वियोग कभी-कभी ऐसा कोमल, उदार और सहिष्णु कर देता है देखिये—

फिर ब्रज बसहु गोकुलनाथ ।
बहुरि तुमहि न जगाय पठवौं गोधनन के साथ ॥
बरजों न माखन खात कबहूँ, देहुँ देन लुटाय ।
कबहुँ न दैहों उरहनों जसुमति के आगे जाय ॥

इतना दुःखी होने पर भी वे कृष्ण का स्मरण तो करती ही हैं, कृष्ण के प्रेम को ही सर्वस्व समझती हैं। उद्धव जी उन्हें ज्ञान देते हैं पर वे यही कहती हैं—

मधुकर ! कौन मनायो मानै ?
सिखहु तिनहि समाधि की बातें जे हैं लोग सयाने ।
हम अपने ब्रज ऐसेहि बसि हैं विरह बाय बौराने ॥

उद्धव जब बार-बार उन्हें योग-साधना का ही उपदेश देते हैं तो वे बड़ी चतुरता से उत्तर देती हैं—

ऊधो ! मन नाहीं दस बीस ।
एक हुतो सो गयो श्याम सँग को आराधै ईश ॥

मन तो एक था उसको तो कृष्ण ले गए, अब ईश्वर की आराधना करे कौन ? और अब दुःख तो इसी बात का है कि कृष्ण मन को भी साथ लेकर चले गये—

ऊधो ! मन नाहीं हाथ हमारे ।
रथ चढ़ाय हरि सङ्ग ले गये मथुरा जबै सिधारे ॥

नहीं तो भला हम तुम्हारे योग को छोड़ देतीं ? तुम तो उसे प्रेम से जो लाये थे। इस प्रकार उन्होंने योग सीखने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

उद्धव उनको कहीं ये न कहें कि "जब मैं दवाई दे रहा हूँ जिससे कि वियोग का पल्ला ही छूट जाय तो तुम तब भी क्यों कृष्ण प्रेम में ही फँसी हो" तो गोपियाँ कहती हैं—

ऊधो ! मन माने की बात ।
दाख छुहारे छाँड़ि अमृतफल विष कीरा विष खात ।

× × ×

जरत पतङ्ग दीया में जैसे और फिर-फिर लपटात ॥

भ्रमरगीत में जहाँ स्मरण आदि की भावनाएँ आई हैं वैसे ही "असूया" की बड़ी वक्रतापूर्ण व्यंजनाएँ मिलती हैं। जब उद्धव कृष्ण का संदेश कह अपनी ज्ञान-चर्चा छेड़ते हैं तभी गोपियाँ कहती हैं कि यह कृष्ण का संदेश नहीं जान पड़ता। यह तो कुबड़ी पीठ वाली की कारस्तानी मालूम देती है—

मधुकर ! कान्ह कही नहि होहीं।
यह तो नई सखी सिखई है निज अनुराग बरोहीं।
सचि राखि कूबरी पीठ पै ये बातें चकचोंहीं॥

फिर वे "असूया" का भाव इन स्पष्ट शब्दों में प्रकट करती हैं कि इस समय कृष्ण की चहेती कुब्जा का ही जीवन सफल है—

जीवन मुँह चाही को नीको।
दरस-परस दिन-राति करति है कान्ह पियारे पी-को।

गोपियाँ राधा को सम्बोधित करके वाग्वैचित्रता से कहती हैं—

मोहन माँग्यो अपनो रूप।
या ब्रज बस अबै तुम बैठी, ता बिनु तहाँ निरूप॥

अरी ! कृष्ण का रूप तुम पी गई हो, अतः वह उसके बिना वहाँ निरूप-निराकार— हो रहे हैं। राधा भी इसी बाँकेपन से कृष्ण के हृदय से न निकलने का कारण बताती है—

उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो ! तिरछे ह्वै जु अड़े॥

कृष्ण की मूर्ति हृदय में तिरछी होकर अड़ गई है निकले तो कैसे ?

सूर ने अपने सिद्धान्त पक्ष का जो काव्यात्मक निरूपण किया थोड़ा उसे भी देखें। उद्धव के ज्ञान-योग की पूरी वक्तृता सुन कर और उसे अपने सीधे-सादे प्रेम मार्ग की अपेक्षा कहीं दुर्गम और दुर्बोध समझ कर गोपियाँ कहती हैं—

काहे को रोकत मारग सूधौ ?
सुनहु, मधुप ! निर्गुन-कंटक तें राजपथ क्यों रूँधो ?

ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधो ।

सूर मूर अक्रूर गए लै व्याज निबेरत ऊधो ॥

हम अपने प्रेम या भक्ति के सीधे और चौड़े राजमार्ग पर जा रही हैं उस मार्ग में तुम ये निर्गुण रूपी काटे क्यों बिछाते हो ? हमारा रास्ता क्यों रोकते हो ? तुम अपने मार्ग पर चलो, हम अपने पर चलें । सूर भी भक्ति विरोधी ज्ञान के विरोधी हैं, ज्ञान के नहीं । गोपियाँ अन्त में उद्धव से कहती हैं—

सुनि है कथा कौन निर्गुन की, रचिपचि बात बनावत ।

सगुन सुमेरु प्रकट देखियत, तुम तृन की ओट दुरावत ॥

अरे ! तुम व्यर्थ तिनके की ओट में दमकता हुआ सुमेरु छिपाने का यत्न कर रहे हो ।

उद्धव ब्रह्म का निरूपण करते हैं, गोपियों की समझ में यह नहीं आता । वे कहती हैं—

रेख न रूप, बरन न जाके नहि ताको हमें बतावत ।

अपनी कहौ, दरस वैसे को तुम कबहूँ हौ पावत ?

इसके साथ ही गोपियाँ उद्धव से यह भी कहती है कि उद्धवजी जिसका ध्यान करने को तुम कहते हो उसका कुछ परिचय तो दो—उसके बिना ध्यान कैसे लगे—

निर्गुण कौन देश को वासी ?

मधुकर हँसि समझाय सौंह दे बूझति साँच, न हाँसी ॥

वियोग श्रृङ्गार के अन्तर्गत जितने भी मनोभाव हो सकते हैं उन सबका वर्णन भ्रमरगीत में है । इस प्रकार सूरदास ने पार्थिव में अपार्थिव की व्यंजना की है ।

अन्त में इतना कहना है कि भागवत् के बाद सूरदासजी ने ही सर्वप्रथम भ्रमरगीत की रचना की, और उसमें इतनी सरसता भरी कि बाद में भी सभी कृष्ण कवियों ने इस पर कुछ न कुछ लिखा । वास्तव में भ्रमरगीत सूर की अपूर्व देन है ।

प्रश्न ७—"वात्सल्य के क्षेत्र का जितना अधिक उद्‌घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किय , उतना किसी और कवि ने नहीं, वे इसका कोना-कोना झांक आये हैं।" इस उक्ति से आप कहां तक सहमत हैं ?

उत्तर—भक्त प्रवर सूरदासजी ने वात्सल्य को भी भक्ति में बहुत उच्च स्थान दिया है। वात्सल्य स्नेह मनुष्य-मात्र की एक सहज प्रवृत्ति है; साथ ही मनुष्य को संसार में लिप्त कराने के लिए संतान का मोह भी एक ऐसा प्रबल कारण है, जिसका अतिक्रमण करना अत्यन्त कठिन है इसलिए यह समीचीन है कि इस प्रवृत्ति को भी श्री कृष्णोन्मुख करके परिष्कृत रूप दे दिया जाय। वार्ता के अनुसार सूर को दीक्षा देते समय महाप्रभु बल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण की बाल लीला पर ही उनका ध्यान आकृष्ट किया था। आचार्यजी ने बालकृष्ण को इष्टदेव के रूप में उपस्थित किया है। उन्होंने कृष्णलीला पर जितना बल दिया उतना अन्य सम्प्रदाय वालों ने न दिया। लीलागान ही उनकी भक्ति थी। फलतः सूरदासजी ने भी वात्सल्य भाव के ही पद रचकर उन्हें सुनाये थे। इधर श्रीमद्‌भागवत् भी कृष्ण की बाल-लीला का चित्रण था। सूरदास जी ने पुष्टि सम्प्रदाय से प्रेरणा तथा भागवत् से आधार लेकर कृष्ण के ब्रह्म रूप और बाल चरित्र का अत्यन्त विशद्, विस्तृत और स्वाभाविक चित्रण किया और उसके द्वारा यशोदा एवं नन्द के वात्सल्य मान की सरस तथा मधुर अभिव्यक्ति की।

यशोदा-कृष्ण सम्बन्ध की कथा को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। (१) जब कृष्ण माता यशोदा के समक्ष ब्रज में थे और (२) जब वे मथुरा चले गये। इनको हम क्रमशः संयोग व वियोग वात्सल्य कह सकते हैं। सूरदास ने इसके दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण किया हैं। वात्सल्य (वियोग) के सम्बन्ध में उनके पद अधिक नहीं, उन्होंने तो वात्सल्य (संयोग) पर ही अपनी कलम का कमाल दिखाया है। उन्होंने मातृ हृदय की प्रत्येक परिस्थिति का बड़ा सूक्ष्म चित्रण किया है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व को यशोदा के व्यक्तित्व में मिलाकर श्रीकृष्ण की बाल लीला में भाग लिया है। यशोदा-कृष्ण के प्रसंग में ही स्वयं सूर के वात्सल्यपूर्ण हृदय का भी चित्रण हो गया है।

रस की निष्पत्ति में स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव व संचारी भावों क

आवश्यकता होती है। वात्सल्य-रस में स्थायी भाव बाल-प्रेम है। आलम्बन बालक, आश्रय माता, उद्दीपन बालक का शारीरिक सौन्दर्य, बुद्धि-कौशल बालकेलि आदि; अनुभाव, प्रसन्नता, हास्य, गोद लेना, चूमना आदि; संचारी भाव-पुलक, स्मृति, हर्ष आदि हैं। सूर ने वात्सल्य-रस के अङ्ग-प्रत्यङ्ग का, वर्णन किया है। यहाँ आलम्बन कृष्ण हैं, आश्रय यशोदा; उनकी लीलाएँ उद्दीपन; यशोदा का प्रसन्न होकर हँसना आदि चेष्टायें अनुभाव हैं।

सूर का बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान उन्हें वात्सल्यरस की सृष्टि में सहायता देता है। यद्यपि बाललीला में कहीं-कहीं अद्भुत रस भी आ गया पर वह प्रधान नहीं गौण है; अतएव खटकने वाला भी नहीं। इस सामान्य विवेचन के बाद हम वात्सल्य रस का आस्वादन करें।

श्रीकृष्ण ने सुन्दर वस्त्र-आभूषण धारण किये हैं। यशोदा के हृदय में जो सुख उमड़ता है उसके दर्शन कीजिये—

आँगन श्याम नचावहिं यशुमति नँदरानी।

तारी दै-दै गावहिं मधुरी मृदुबानी॥
पायन नूपुर बाजई, कटि किंकनि कूजैं।
नन्हीं एड़ियन असलता फल बिम्ब न पूजैं॥

× × × ×

हौं वलि जाउँ छबीले लाल की।
धूसर धूरि घुटुरुवन रेंगनि बोलनि वचन रसाल की॥
छिटकि रहीं चहुँ दिशि जु लटुरियाँ लटकन लटकत भाल की।
मोतिन सहित नासिका नथुनी कण्ठ कमल दल माल की॥
कुछु कै हाथ--कछू मुख माखन, चितवनि नयन बिशाल की।
सूरज प्रभु के प्रेम मगन भईं ढिग न तजति ब्रज बाल की॥

यशोदा या गोपियाँ कृष्ण के इस सौंदर्य को देखकर कृष्ण का सामीप्य नहीं छोड़ना चाहतीं। एक अन्य उदाहरण लीजिए—

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मणिमय कनक नन्द के आँगन मुख प्रतिबिम्ब पकरिवे धावत॥
कबहुँ निरखि हरि आप छाँह को करसों पकरन को चित चाहत।

किलकि हँसत राजति द्वै दतियाँ पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ।।

इस पद में अपने मुख प्रतिबिम्ब को देखकर बालकृष्ण का उसे पकड़ने दौड़ना आदि का नैसर्गिक वर्णन हुआ है। सूर की यह अनूपम विशेषता है कि वह स्वाभाविक बाल दशाओं के चित्रण द्वारा पाठकों के मन में सहज ही रसोद्रेक कर देते हैं।

अब निम्न पद में बालकों को सुलाने का एक दृश्य देखिए—

यशोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै ।।
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे नहिं बेगहि आवे तो को कान्ह बुलावै ।।
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रहि करि करि सैन बतावै।।
इहि अन्तर अकुलाय उठे हरि यशुमति मधुरै गावै ।।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नन्द भामिनि पावै ।।

बच्चों को सुलाने के लिए गीत गा-गा कर पालने में झुलाना और धीरे-धीरे थपकी देना अचूक साधन है। यशोदा भी यही कर रही हैं। इसमें घरेलू बातें हैं, बात सामान्य सी है, पर इसी सामान्य का सूर ने कितनी सजीवता से वर्णन किया है।

सूरसागर में ऐसे दृश्यों की कमी नहीं, जिन्हें देख दर्शक तृप्त नहीं होते। बालदशा के न जाने कितने विभिन्न रूप सूर को अपनी बन्द आँखों से दिखाई देते थे। एक और चित्र देखिए। बालकृष्ण आँगन में घुटने के बल चल रहे हैं। नन्दरानी उन्हें देखती हैं। कृष्ण कभी हँसते हैं, कभी गिर पड़ते हैं। नन्द इस दृश्य को देख परम आनन्दित होते हैं।

माता मन में अभिलाषा करती थी कि कृष्ण चलने लगे, आज अपनी उस अभिलाषा को पूर्ण होता देख वह मन में प्रसन्न होती है, कृष्ण की शोभा भी वरणी नहीं जाती—

कान्ह चलत पग दै दै धरनी ।
जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नन्द घरनी ।।

रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह है अति मन हरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरत है छबि जात न बरनी॥

श्रीकृष्ण की बाल-छवि का और चित्र देखिए—

शोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुन चलत, रेनु तनु मंडित, मुख दधि लेप किए॥

+ + +

मेरौ माई ऐसो हठी बाल गोविन्दा।
अपने कर गहि गगन बतावत खेलन को माँगैं चन्दा॥

श्रीकृष्ण की इस बाल-छबि में जहाँ अनुपम शारीरिक सौन्दर्य प्रकट हुआ है, वहाँ उसमें आन्तरिक बुद्धिचातुर्य भी कम नहीं। कृष्ण एक दिन सन्ध्या समय माखन-चोरी के लिए एक घर में घुस गए। दही में हाथ डाला ही था कि गोपी ने आकर पकड़ लिया। गोपी कहती है—

श्याम कहा चाहत से डोलत।
बूझे हुते बदन दुरावत सूधे बोल न बोलत।
सूने निपट अँधियारे मन्दिर दधि भाजन में हाथ॥
अब कहि कहा बनै हौ उत्तर कोऊ नाहि न साथ॥

कृष्ण अपनी सहज बुद्धि-चातुर्य से उत्तर देते हैं—

मैं जान्यो यह घर अपनो है या धोके में आयो।
देखत ही गोरस में चींटी काढ़न को कर नायो॥

यह उत्तर सुनकर गोपी मुस्कराने लगी—

सुनि मृदु बचन निरखि मुख शोभा ग्वारिनि मुरि मुसकानी।

कृष्ण ने माखन चोरी की। मौके पर पकड़े भी गए। अब उसे छिपाना भी है। अपनी माखन-चोरी को कृष्ण किस भाँति छिपाते हैं। इसका भी एक उदाहरण देखिए—

मैया मैं नहिं माखन खायो।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।
देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचे धर लटकायो।

तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो ।।
मुख दधि पोंछ कहत नन्द नन्दन दोना पीठि दुरायो ।
डारि साँटि मुसकाई तबहिं गहि सुत को कण्ठ लगायो ।।

एक बार कृष्ण बलदाऊ के साथ खेलने चले गए। खेलते-खेलते झगड़ा हो गया और बलराम कह बैठे "तुझे तो दाई को पैसे देकर मोल लिया है।" कृष्ण रोते माँ के पास आए और कहने लगे—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो ।
मोसों कहत मोल को लीनों तू जसुमति कब जायो ।
कहा कहौं इहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरी तात ।।
गोरे नन्द जसोदा गोरी तू कत श्याम शरीर ।
चुटकी दै-दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर ।।

\+ + +

खेलन अब मेरी जात बलैया ।
जबहिं मोहि देखत लरिकन संग तबहि खिजत बल भैया ।।
मोसों कहत पूत बसुदेव को देवकी तेरी मैया ।
मोल लयो कछु दै वसुदेव को करि करि जतन बढैया ।।
सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत ।
सूर श्याम मोंहि गोधन की सों हों माता तू पूत ।।

मातृ-हृदय की अभिव्यंजना जितनी इसमें हुई है शायद ही अन्यत्र हो। गोपियाँ नित्य यशोदा को उलाहना कृष्ण की चोरी का देती थीं। एक दिन माता ने उन्हें ऊखल से बाँध दिया। जब वे हिचकियाँ भर-भर कर रोने लगे तो गोपियाँ यशोदा को निष्ठुर कहने लगीं। इस पर यशोदा कहती हैं—

कहिन लगी अब बढ़ि-बढ़ि बात ।
ढोटा मेरो तुमहि बँधायो, तनिकहि माखन खात ।।

\+ + +

मेरे लाल को प्राण खिलौना ऐसे को ले जैहै री ।
नेंक सुनत जो पैहों ताकों सो कैसे ब्रज रहै री ।।

मातृ हृदय की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति है इस पद में—

यह तो हुई कृष्ण के ब्रज में रहने तक की बात। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर जो कुछ माता यशोदा कृष्ण को याद करती हैं और उनमें अपने को घुला देती हैं, उससे वत्सलता की रही सही कमी भी पूर्ण हो जाती है। वे कृष्ण से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं को देख उन्हें स्मरण करती हैं और कहती हैं:—

मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब वैसे ही धरयो रहै।
को उठि प्रात होत लै माखन, कौ कर नेत गहै॥
सूने भवन यशोदा सुत के गुनि-गुनि सूल सहै।

× × × ×

निसि वासरि छतियाँ लै ल्याऊँ,
बालक लीला गाऊँ॥
वैसे भाग बहुरि फिरि ह्वै हैं,
मोहन मोद खवाऊँ॥

मातृ हृदय का एक अन्य उदाहरण देखिए। यशोदा पथिक से कहती हैं:-

सँदेशो देवकी सों कहियो।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की मया करति ही रहियो॥
यद्यपि टेव जानि तुम उनकी तऊ मोही कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हहि माखन रोटी भावै॥
तेल उबंटनों अरु तातो जल ताहि देख भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती क्रम-क्रम के न्हाते॥

वात्सल्य रस के अन्तर्गत यशोदा के हृदय का जो इतना चित्रण हुआ है उसका कारण यह है कि वात्सल्य का पूरा-पूरा अनुभव मातृ-हृदय को ही होता है। कृष्ण के संयोग व वियोग दोनों अवस्थाओं में कृष्ण उनके प्राण हैं। संयोग के अवसर पर उसे वियोग की तनिक भी चिन्ता नहीं और वियोग में उनके गुणों को भूल नहीं पातीं। उनका वात्सल्य जब पूर्णता को प्राप्त होता है तो वह पति प्रेम के भी ऊपर उठ जाती हैं। वे नन्द को उलाहना देती हैं कि उन्होंने भी दशरथ के पथ का अनुसरण क्यों नहीं किया। सूरदास की ही

यह श्रेष्ठता है कि वे इसको पूर्णतया अभिव्यक्त करने में सफल हुए। इस प्रकार हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि सूर ने वात्सल्य का कोना-कोना झाँका है और उसका उद्घाटन पूर्णता से किया है।

प्रश्न ८—भारतीय साहित्य में राधाके व्यक्तित्व के विकास पर समीक्षात्मक विचार प्रगट कीजिए।

उत्तर—आज जो राधा हमारे जीवन में इतना घुल-मिल गई है, उसके सम्बन्ध में भागवत में भी कुछ लेख नहीं मिलता। अन्य पुराणों में भी उसका नाम नहीं आया। हाँ भागवत के दशवें स्कन्ध में एक गोपी का नाम अवश्य आया है जो श्रीकृष्ण को सर्वाधिक प्रिय थी। रासलीला में जब श्रीकृष्ण गोपियों का गर्व दूर करने के लिए अन्तर्ध्यान हो गए, तब उन्होंने कृष्ण की बहुत खोज की। वे नहीं मिले फिर उन्हें एक स्थान पर उनके चरण चिन्ह दिखाई दिए। उन्होंने निश्चय किया कि यह चरण कृष्ण के ही हैं। निकट जाकर जब उन्होंने देखा तो उन चरण चिन्हों के साथ उनको किसी ब्रज युवती के चरण भी दीखे। वे व्याकुल हो गईं और कहने लगीं—

अनायाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनमद् रहः॥

अर्थात् अवश्य इस गोपी ने भगवान् की आराधना की है जो कृष्ण हमें छोड़ कर उसे साथ ले गये हैं।

उक्त उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि वह गोपी कृष्ण को बहुत प्रिय थी, भागवत् में उसका नाम नहीं है। सम्भव है इसके अनन्तर किसी कवि ने "आराधित" शब्द से राधा की कल्पना कर ली हो। वैसे भी "आराधितः" से राधा का अर्थ लेना कठिन कार्य नहीं।

एक विचार यह भी कि यहाँ शिव-पार्वती की पूजा प्रचलित थी, उसी के आधार पर विष्णु व लक्ष्मी की भी पूजा होने लगी। बाद में लक्ष्मी का सम्बन्ध कृष्ण के साथ भी स्थापित हुआ—उनके विष्णु के अवतार होने के कारण—इसी लक्ष्मी को निम्बार्क स्वामी के वृषभानुजा राधा कह कर, कृष्ण की शाश्वत पत्नी के रूप में उपस्थित किया।

राधा शब्द की उत्पत्ति के विषय में डा० भण्डारकर कहते हैं कि राधा सीरिया से आये आमीरों की इष्टदेवी है। आमीरों के यहाँ बस जाने पर उनके बाल-गोपाल सात्वत धर्म के उपदेष्टा भगवान् कृष्ण के साथ सम्मिलित होगये और कुछ शताब्दियों के अनन्तर आमीरों की इष्ट देवी राधा भी आर्य जाति में स्वीकार करली गई। यही कारण है कि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में बाल-गोपालों की लीला तो मिलती है, पर राधा का नाम नहीं मिलता। पर इस मत को हम मान्यता नहीं दे सकते, कारण इस देश के किसी भी ग्रन्थ में अहीरों को बाहर से आया स्वीकार नहीं किया गया है। अधिक से अधिक उन्हें द्रविड़ वंश से सम्बद्ध क्षत्रिय माना जा सकता है। यदुवंशी क्षत्रियों से इनका पर्याप्त सम्बन्ध है; हो सकता है दक्षिण के अहीरों में पहले राधा का प्रचार हुआ हो और बाद में कृष्ण भक्ति के साथ उसका सम्बन्ध जुड़ गया हो।

राधा का नाम सर्वप्रथम ब्रह्मवैवर्त पुराण में आता है। कतिपय विद्वानों के मत में यह पुराण वर्तमान रूप में बहुत बाद को लिखा गया है। इस पुराण में आये कुछ शब्द मोदक, जोला आदि बङ्गाल में प्रचलित जातियों के नाम हैं। बङ्ग देशीय वैष्णव भक्तों पर ही इस पुराण की राधाकृष्ण सम्बन्धी पूजा का सर्वप्रथम सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। इस पुराण ने भक्ति के रूप को ही बदल दिया। राधा के चरित्र को पूर्ण रूप से प्रतिष्ठापन करने का श्रेय भी इसी पुराण को है। भक्ति के इस परिवर्तित रूप ने बंगीय वैष्णव धर्म को माधुर्य-प्रधान बना दिया। जयदेव ने इसी नूतन वैष्णव धर्म का अवलम्बन कर गीत गोविन्द की रचना की। महात्मा चैतन्य ने भी धर्म की इसी अभिनव धारा का आश्रय लेकर मधुर रस-पूर्ण रामानुजा भक्ति का प्रचार किया।

इस अभिनव धर्म का बीज सांख्य-शास्त्र के पुरुष-प्रगतिवाद में था, जो शिव व शक्ति के रूप में तन्त्रमत में स्वीकार हुआ। शक्तिवाद के कारण विद्वान् व जन-साधारण दोनों अधिक आकृष्ट हुए। वैष्णवों के विशिष्टा द्वैत-वाद सम्भवतः बङ्गीय भक्तों को नष्ट न कर सका। सम्भवतः इसी कारण इस मत को ब्रह्मवैवर्त में स्वीकार करा लिया गया। ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण ने राधा को अपना अर्द्धांश और मूल प्रकृति कहा है। आगे चलकर तो राधा और कृष्ण में कोई भेद ही नहीं दिखाया, दोनों एक हैं।

"ममार्द्धांश स्वरूपात्वं मूल प्रकृतिरीश्वरी ।"

× × × ×

"यथा त्वया बिना सृष्टि न च कर्तुमाहं क्षमः ।
सृष्टोराधार भूता त्वं बीज रूपोऽहम् च्युतः ॥"

अर्थात् राधा सृष्टि का आधार है और कृष्ण अविनश्वर बीज रूप हैं ।

महात्मा सूरदास जी ने भी राधा-कृष्ण में अभेद की स्थापना की है । इन पंक्तियों को देखिये—

"प्रकृति पुरुष एकै करि जानहु बातनि भेद करायो ॥"

ऐसा प्रतीत होता है कि नवीन वेदान्त के मायावाद के मूल में यही प्रकृतिवाद है, जो तन्त्र मत में शक्तिवाद के रूप में स्वीकृत हुआ । बाद में यही शक्ति श्री और राधा बनी ।

ब्रह्मवैवर्तकार ने राधा शब्द की व्युत्पत्ति दो रूप से दी है । एक है—

रासे संभूय गोलेके रधाव हरेः पुरः ।
तेन राधासमा ख्याता पुराविद्भि : द्विजोत्तमः ।

अर्थात् वह गोलेक में रास में प्रकट हुई, हरि के आगे आगे गई । अतः रा और धा से राधा शब्द बना । दूसरा "रा" दाने धातु से उन्होंने व्युत्पत्ति की है कि—राकारो दान वाचकः ।

धा निर्वाणंच तद्दात्री च तेन राधा प्रकीर्तिता

अर्थात् वह निर्वाण को देने वाली है, अतः राधा हुई । ब्रह्मवैवर्त में तो राधा का विवाह भी वर्णित है ।

ब्रह्मवैवर्त में जहाँ राधा और कृष्ण में अभेद सम्बन्ध स्थापित किया गया है, वहाँ राधा को कृष्ण की पूरक शक्ति भी कहा गया है । जैसे मिट्टी के बिना कुम्भकार कार्य नहीं कर सकता, ऐसे ही कृष्ण भी राधा के बिना कार्य नहीं कर सकते । कृष्ण का अस्तित्व राधा के आश्रय से है । अतः राधा ही सब कुछ है । इसलिये मध्वाचार्य के शिष्य परम्परा के हित हरिवंश जी ने राधा-स्वामी सम्प्रदाय की स्थापना की व उसमें राधा के ही महत्व को स्वीकार किया । इस प्रकार धीरे-धीरे राधा का चरित कृष्ण से भी प्रधान हो गया । कविवर बिहारी ने अपनी सतसई के आरम्भ में राधा की ही आराधना की है—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित दुति होय॥

प्रश्न ९—सूरदास के दार्शनिक विचारों पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालिये।

उत्तर—सूरदास भक्त हृदय कवि थे। दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या करना उनका लक्ष्य नहीं था। दार्शनिकता की विवेचना के लिए उनके गुरुदेव उपस्थित ही थे। उनका संस्कृत का ज्ञान भी बहुत अल्प था, संस्कृत के ज्ञान के अभाव के कारण वे दर्शन शास्त्रों का अध्ययन भी नहीं कर सके। भागवत की कथा भी उन्होंने स्वयं नहीं पढ़ी प्रत्युत महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्यत्व ग्रहण करने के अनन्तर आचार्यजी ने भागवत की अनुक्रमणिका उन्हें सुनाई। पुष्टि-मार्ग के धार्मिक सिद्धान्त भी उन्होंने महाप्रभु से ही सुने थे। समय-समय पर सम्प्रदाय की बैठक में दार्शनिक तत्वों का जो विवेचन होता था उसे भी उन्होंने आचार्य महाप्रभु के मुख से ही सुना था। इस विषय में सूरदास जी स्वयं कहते हैं—

माया काल कछू नहि व्यापे, यह रस रीति-जु जानी।
सूरदास यह सकल समग्रो, गुरु प्रताप पहिचानी॥

यही कारण है कि हम उनके अनेक पदों में उच्चकोटि के दार्शनिक सिद्धांत पाते हैं। जिनमें माया, ब्रह्म आदि का निरूपण है।

सूरदास वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे, जिनके दार्शनिक मतवाद को शुद्धाद्वैत कहते हैं। अतः उनके दार्शनिक सिद्धान्तों में भी महाप्रभु के पुष्टिमार्ग का प्रभाव है। वल्लभाचार्यजी के मतानुसार श्रीकृष्ण परब्रह्म और कृष्ण में कुछ भी अन्तर नहीं। इनके गुण सत्, चित् आनन्द और रस हैं। उन्हीं से जीव व प्रकृति की उत्पत्ति हुई। जीव में कृष्ण के सत् व चित् गुणों का प्रादुर्भाव हुआ, किन्तु आनन्द तिरोभूत रहा। इसी प्रकार जड़ प्रकृति में केवल सत् तत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ और चित तथा आनंद तिरोभूत रहे। वस्तुतः तीनों तत्वों की यही विभिन्नता जीव, प्रकृति और परमात्मा के भेदों का कारण

है। इसमें माया का कोई हाथ नहीं।। उनके मत में जीव भी उतना ही सत्य है जितना कि ब्रह्म। जीव ब्रह्म में कोई विभेद नहीं। दोनों एक हैं। अंश मात्र होने के कारण जीव की शक्ति परिमित है और पूर्ण होने के कारण ब्रह्म की शक्तियाँ अपरिमित हैं। जीव के समान ही प्रकृति भी ब्रह्म की आंशिक अभिव्यक्ति मात्र है। आनन्द तथा सत् के तिरोभाव से उसका विकास सम्भव है।

मुक्ति के सम्बन्ध में विचार करते हुए बल्लभाचार्य जी ने आत्मायें तीन प्रकार की मानी हैं (१) मुक्ति योगिन् (२) नित्य संसारिन (३) तमो योग। नित्य संसारिन आत्मा की मुक्ति नहीं होती। तमोयोग आत्मायें इनसे भी निकृष्ट हैं। मुक्ति योगिन् आत्मायें ही ऐसी आत्मायें हैं जो मुक्ति प्राप्त कर पाती हैं। मुक्ति योगिन् आत्मायें भी बिना परब्रह्म के अनुग्रह के मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकतीं। इसी अनुग्रह का नाम ही महाप्रभु ने पुष्टि रखा है। उनका विचार है कि भक्ति और अनुग्रह द्वारा मुक्ति ही मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिये वल्लभाचार्यजी ने पुष्टि चार प्रकार की बताई हैं—प्रवाह पुष्टि, मर्यादा पुष्टि, पुष्टि पुष्टि तथा शुद्ध पुष्टि।

प्रवाह पुष्टि के अनुसार भक्त संसार में रहता हुआ भी श्रीकृष्ण की भक्ति करता है। मर्यादा पुष्टि के अनुसार भक्त संसार के समस्त सुखों से अपना हृदय खींच लेता है और श्रीकृष्ण के गुणगान एवं कीर्तन द्वारा उनकी भक्ति करता है। पुष्टि में श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त हो जाता है। किन्तु साथ ही भक्त की साधना भी बनी रहती है। शुद्ध पुष्टि में भक्त भगवान् पर पूर्ण आश्रित हो जाता है। भगवान् उस पर अनुग्रह करते हैं। इस अनुग्रह के प्राप्त होने पर भक्त के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति इतनी अनुभूति होती है कि वह भगवान् की लीलाओं से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। बल्लभाचार्य जी के सम्प्रदाय में इसी (शुद्ध पुष्टि) को परमोच्च माना गया है।

माया के विषय में आचार्य महाप्रभु के विचारानुसार परमात्मा से आत्मा और प्रकृति के विकास होने में माया का हाथ नहीं। माया जिस प्रकार पारमार्थिक सत्ता को हमारी दृष्टि से छिपा देती है उसी प्रकार उससे मिलाने में भी सहायता देती है। श्री शंकराचार्य के मतानुसार जीवात्मा तथा परमात्मा में भिन्नता माया के कारण दिखाई पड़ती है, वास्तव में यह नानात्व मिथ्या है?

किन्तु आचार्य वल्लभ के अनुसार जीवात्मा की परमात्मा से भिन्नता सत्य है और इस भिन्नता का कारण भी परमात्मा ही है। वल्लभाचार्य ने माया को ब्रह्म की शक्ति कहा है—

"या जगत् कारण भूता भगवच्छक्ति, सा योग माया।"

संक्षेप में महाप्रभु के यही दार्शनिक सिद्धान्त हैं।

जब हम वल्लभाचार्य और सूरदास के सिद्धान्तों को देखते हैं तो पता चलता है कि सूरदास ने आचार्य महाप्रभु के सिद्धांतों का पूर्णतया पालन नहीं किया। वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों में आविर्भाव, तिरोभाव जैसे पारिभाषिक शब्द स्थान-स्थान पर आये हैं। किन्तु सूरसागर में नहीं। जहाँ महाप्रभु ने माया कि तुलना "कनक कपिश वस्त्र" से की है वहाँ सूरदास ने उसे 'काली कमरी" माना है। सूरदास ने राधा को कृष्ण की शक्ति का प्रतीक माना है जबकि महाप्रभु के सिद्धान्तों में राधा का कोई स्थान नहीं।

आचार्य वल्लभ के दार्शनिक विचारों को लेने के बाद अब हम सूरदास जी के दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना करेंगे।

सूरदास के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। सगुण भी और निगु'ण भी। भगवान स्वयं कहते हैं—

को माता को पिता हमारे।

कब जनमत हमको तुम देख्यो। हँसी लगत सुनि बात हमारे।।

सूरदास भी कहते हैं—

पिता मात इनके नहीं कोई।

आपुहि करता आपुहि हरता निरगुण गये ते रहत हैं जोई।।

सूरसागर में कई स्थानों पर विष्णु, हरि आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है और इसकी बन्दना भी हुई है। उन्होंने राम को भी उतना ही महत्त्व दिया है जितना कि कृष्ण को, किन्तु राम कथा का विस्तार उन्होंने नहीं किया। वस्तुतः विष्णु, हरि, राम ये सब कृष्ण के ही नाम हैं। ये निगु'ण ब्रह्म के सगुण रूपों के नाम हैं। वास्तव में विष्णु त्रिदेवों—ब्रह्मा, विष्णु महेश—में से एक देव समझे जाते हैं, किन्तु सूरदास के विष्णु परब्रह्म ही हैं जो वास्तव में श्रीकृष्ण

हैं। सूरदास के श्रीकृष्ण मूल रूप में निर्गुण हैं, किन्तु साधारण जनों के लिए उस अगम, अगोचर के रूप की कल्पना करना असम्भव है। इसी से सूरदास ने सगुण उपासना को अपना ध्येय बनाया।

अविगत गति कुछ, कहत न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै॥

× × ×

रूप, रेख, गुनि, जाति, जुगति बिनु निरालम्ब मन कित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातें सूर सगुण लीला पद गावै॥

यदि हम सूरदास के दार्शनिक सिद्धान्तों का अवलोकन करें तो प्रतीत होता है कि उन्होंने कृष्ण के दो रूप हमारे सामने रखे हैं—निराकार व साकार—वास्तव में कृष्ण पूर्ण पुरुष और निराकार हैं, किन्तु भक्तों के लिए वे लीला रूप धारण कर लेते है। इस प्रकार भक्तों की भावना से निर्गुण सगुण हो जाता है।

सूरदास जी ने माया का वर्णन तीन प्रकार से किया है। (१) माया का दार्शनिक रूप (२) माया का सांसारिक रूप और (६) माया का राधा रूप वल्लभाचार्य के समान ही सूरदास भी मानते हैं कि माया ब्रह्म के वश में है। "सों हरि माया जा वश माही।" सूर के मतानुसार माया की सत्ता ब्रह्म से पृथक् नहीं। वह प्रलय के बाद उसीके पदों में समा जाती है। वह ब्रह्म हैं का ही अंश है। पर माया का त्रिगुणात्मक रूप ही ब्रह्मा को ढक लेता है। सत्य को भुलावा देकर माया असत् (अविद्या) को उत्पन्न करती है। जीवात्मा माया के आवरण को ही सत्य समझती है, यही अविद्या है। अतः माया का दूसरा नाम सूर ने "अविद्या" भी है। "सूरदास की सवै अविद्या दूर करो नन्दलाल" कहकर इसी ओर संकेत किया है, किन्तु जहाँ इस अविद्या का कोई आधार नहीं, भगवान् उसे लीला-मात्र के लिए ओढ़ लेते हैं, वहाँ सूर ने उसे भगवान् की भक्ति का दृढ़ आधार कहा है।—

यह कमरी कमरी करि जानति।
जाके जितने बुद्धि हृदय में है सो जितनी अनुमाति।
या कमरी के एक रोम पर वारों चीर नील पाटंबर।

सो कमरी तुम निन्दति गोपी जो तीन लोक आडम्बर
कमरी के बल असुर सँहारे कमरिहिं तें सब भोग।
जाति पाँति कमरी सब मेरी 'सूर' सबहि यह योग ॥

कृष्ण की कमरी कितनी रहस्यमयी है ? तीनों लोक उसी कमरी से ढँके हुए हैं। कमरी ही की शक्ति असुर संहार और रसानन्द लीलाओं में निहित है। कमरी ही योग है, कमरी ही भोग, कमरी ही शक्ति और कमरी ही कृष्ण को समझाने की कुन्जी। यह कमरी कृष्ण की रहस्यमयी योगमाया है। जिसे हम अपनी बुद्धि से विभिन्न रूपों में समझते हैं।

सूर ने इस अविद्या (माया) का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

माधव जू मेरी इक गाई
अब आजु तैं आपु आगे दई ले आइये चराई ॥
है अति हरिहाई हरकत हू बहुत अमारग जाति।
फिरत वेद बन ऊख उखारत सब दिन अरु सब राति ॥

इसी के कारण वेदों पर भी तर्क करता है, जो कि वर्जित है।

माया का दूसरा रूप सांसारिक माया है। वह माया का मोहकारी रूप है, जो नारी के सौन्दर्य के रूप में विशेषतः विकसित होता है। इससे भक्त की साधना में बाधा उपस्थित होती है। यह माया का उच्छृङ्खल व उत्पाती रूप है। सूर ने इसको गाय का रूपक दिया है—

माधव जू नेक हर को गाइ।
निशि वासर यह इत उत भरमति अगद गही नहि जाइ ॥

माया की भाँति ही राधा भी कृष्ण की शक्ति है। वस्तुतः राधा माया का अनुग्रहकारी रूप है। जिस प्रकार त्रिदेवों के साथ तीनों शक्तियाँ सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती—का सम्बन्ध है उसी प्रकार राधा का कृष्ण के साथ सम्बन्ध है। राधा-कृष्ण के दार्शनिक सम्बन्ध का वर्णन निम्न पद्य में देखिए—

ब्रजहिं बसै आपुहिं बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष एकै करि जानहु बातनि भेद करायौ ॥

× × ×

तब नागरि मन हर्ष भई।
नेह पुरातन जानि श्याम को अति आनन्द भई ॥
प्रकृति पुरुष नारी मैं वे पति काहे भूलि गई ॥

इसीलिए सूरदास राधा से भक्ति का वरदान माँगते हैं। इस दार्शनिकता में राधा की कल्पना सूर की अपनी मौलिकता है।

सूर के मत से मुक्ति का साधन केवल भक्ति सच्ची भक्ति है। उन्होंने अपनी रचनाओं में कहीं भी पुष्टि व मर्यादा का नाम नहीं लिया है, पर उनकी भक्ति-पद्धति को देख यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उनके ऊपर आचार्य जी का पूरा प्रभाव है। मनुष्य के अन्दर काम, क्रोध आदि अनेक दुर्बल प्रवृत्तियाँ हैं—ये भगवान् के अनुग्रह से ही दूर हो सकती हैं। सूर की मुक्ति की कल्पना शुद्धाद्वैत की है। वे सायुज्य मुक्ति नहीं चाहते। उन्हें तो सान्निध्य मुक्ति चाहिए, जिसमें जीव अपनी सत्ता बनाए रखता है। संक्षेप में यही सूर के दार्शनिक विचार हैं।

× × ×

प्रश्न (१०)—सिद्ध कीजिए कि सूरदास जी ने प्रकृति के विशुद्ध रूप का चित्रण किया है।

उत्तर—सूरसागर में उस नटनागर की लीला है, जिसने ब्रज की उन्मुक्त प्रकृति को अपनी क्रीड़ा भूमि बना रक्खा था। कृष्ण की रङ्गस्थली ही यह ब्रज-भूमि है। वे द्वादश वर्ष पर्यन्त ब्रज भूमि के निकट बहती हुई यमुना के पावन-पुलिन, करील कुन्ज, कदम्ब और लता वृक्षों के पास खेलते रहे। श्रीकृष्ण का स्मरण होते ही करील और कदम्ब का भी स्मरण हो आता है और यमुना तट के उन भरकों एवं निकुन्जों को देखते ही बंशीवाला बिहारी मानस-चक्षुओं के सम्मुख नृत्य करने लगता है। श्रीकृष्ण से सम्बद्ध होने के कारण सूरदास का भी ब्रज भूमि और उसकी प्रकृति से प्रेम होना आवश्यक था। जहाँ कहीं भी सूर ने प्रकृति का वर्णन किया है ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उनकी मनोवृत्ति तन्मय हो कर क्षण-क्षण में अभिनव रूप धारण करने वाली उस रूप रमणीयता का दर्शन-सुख लूट रही है। गोपियाँ कहती हैं—

गोपी कहति धन्य हम नारि ।

धनि-धनि ग्वाल, धन्य वृन्दावन धन्य भूमि यह अति सुखका ी ।

धन्य दान धन्य कान्ह मंगैया, धन्य सूर तृण, द्रुम बन डारी ।।

हिन्दी काव्य में प्रकृति का पहला विशद् वर्णन सूर काव्य में मिलता है । उसके कई कारण हैं । उन कारणों में पहला कारण यह है कि वह श्रीकृष्ण की लीला-भूमि है । श्रीकृष्ण ने वहाँ गौयें चराईं, रास रचाया जिनमें प्रकृति का भी विशेष हाथ है । दूसरे सूरदास जी का जीवन स्वयं भी प्रकृति के निकट था । उनका भी अधिकांश समय यमुना तट और ब्रज भूमि में ही बीता । तीसरा कारण यह है कि वल्लभाचार्य जी ने भी ब्रज भूमि की महत्ता स्थापित कर दी थी । उन्होंने भी श्रीनाथ जी की स्थापना के लिए वही स्थान चुना था । लीला नायक श्रीकृष्ण की जन्म-भूमि होने के अतिरिक्त यह पुष्टिमार्गी भक्तों की इष्टदेव मूर्ति का निवास स्थान भी था । ये ही कारण हैं जिनसे सूर ने ब्रज-प्रकृति को अपने काव्य में स्थान दिया , एक बात और ध्यान रखने की है कि सूर ने अपने चरित्र नायक श्रीकृष्ण को अलग रख उसकी लीला भूमि का कहीं भी चित्रण नहीं किया । उनके काव्य में पात्र और ब्रजमण्डल तथा प्रकृति मिल कर एकात्मक हो गए हैं ।

सूर ने प्रकृति वर्णन निम्नलिखित रूपों में किया है—

(क) प्रकृति का विषयात्मक चित्रण ।

(ख) प्रकृति का अलंकृत चित्रण ।

(ग) कोमल व भयङ्कर रूप ।

(घ) प्रकृति मानव क्रिया-कलाप की पृष्ठभूमि ।

(ङ) अलङ्कारों के रूप में प्राकृतिक दृश्यों का प्रयोग ।

(क) प्रकृति का विषयात्मक चित्रण—इस रूप में सूर ने प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अन्य बातों से असम्बद्ध होकर किया है । प्रकृति ऐसे स्थलों में अपने स्वाभाविक रूप में प्रकट हुई है, निम्न पद्य में प्रभात वर्णन देखिए—

चिरई चुह चुहानी, चन्द की ज्योति परानी,

रजनी बिहानी, प्राची पियरी प्रमान की ।

तारका दुरानी, तम घटे, तम चुर बोले,

श्रवण भनक पड़ी ललित के तान की ॥
भृङ्ग मिले भारजा, बिछुरी जोरी कोक मिले,
उतरी पनच अब काम के कमान की।
अथवत आये गृह बहुरि उवत भान,
उठौ प्राणनाथ महा जान मणि जानकी ॥

ब्रह्म मुहूर्त में चिड़ियाँ चहचहाती हैं, चन्द्र की ज्योति क्षीण हो जाती है, पूर्व दिशा कुछ पीलिमा लिए होती है, चकवा चकवी की बिछुड़ी जोड़ी मिल जाती है। बिना अलङ्कारों का अवलम्ब लिए ही इन बातों का उक्त पद में वर्णन है।

निम्न पद में वर्षा का वर्णन देखिए—

माधव मेघ घेरि कित आयो।
घर कों गाय बहोरौ गोहन ग्वालन टेर सुनायो ॥
कारी घटा सधूम देखियत अतिगति पवन चलायो।
चारों दिशा चितै किन देखी दामिन कोंधा लायो ॥

नीचे लिखी पंक्तियों में बसन्त ऋतु का वर्णन अन्य वस्तुओं से कितना असम्बद्ध और अपने शुद्ध रूप में हुआ है—

सरिता शीतल बहत मन्दगति रवि उत्तर दिशि आयो।
अति रसभरी कोकिला बोली बिरहिन विरह जगायो ॥
द्वादश वन रतनारे देखियत चहुँ दिश टेसू फूले।
मौरे अंबुआ अस द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले ॥

प्रकृति का ऐसा शुद्ध वर्णन अन्य कवियों की रचनाओं में प्राप्त नहीं होगा।

(ख) प्रकृति का अलंकृत चित्रण—इस रूप में सूर ने प्राकृतिक दृश्यों को आलङ्कारिक शैली में प्रकट किया है। प्रभात समय में दही बिलोने की घर्र-घर्र ध्वनि मेघ ध्वनि का अनुकरण करती हुई ब्रज के ग्राम-ग्राम व घर-घर में फैल जाती है। देखिए—

घूमि रहे जित तित दधि मथना, सुनत मेघ ध्वनि लाजै री।

निम्न पद में प्रकृति स्वयं मूर्तिमती युवती बन गई। उत्प्रेक्षा के द्वारा

यहाँ उसका युवती-रूप प्रकट किया है। देखिए वसन्त का कितना सुन्दर चित्रण है—

राधे जू वरणों बसन्त।
मानहुँ मदन विनोद विरहत नागरी नव कन्त॥
मिलत सन्मुख पटल-पाटल भरत मान जुही।
बेलि प्रथम समाज कारण मेदिनी कच-गुही॥
केतकी कुच कलस कंचन गरे कंचुकि करी।
मालती मद चलित लोचन निरखि मृदु मुख हँसी॥

उत्प्रेक्षा के साथ ही इसमें अनुप्रास की छटा भी देखने योग्य है।

(ग) प्रकृति का कोमल व भयंकर रूप—

विश्व का प्रत्येक पदार्थ अपने दो पार्श्व रखता है, वाम व दक्षिण, कोमल व भयङ्कर। प्रकृति के भी यही दोनों रूप हैं। प्रात:काल की अरुणिमा और संध्या-कालीन लालिमा में उसका कोमल रूप प्रकट होता है, किन्तु रात्रि की नीरवता व तमोमयता में एवं मध्यान्हकाल के प्रखर ताप में उसका भयङ्कर रूप दृष्टिगोचर होता है। जन साधारण को भी प्रकृति के ये दो रूप दिखाई देते हैं तो साधारण मानव से अधिक भावुक कवि का तो कहना ही क्या? प्रकृति का कोमल रूप देखिए—

नववल्ली सुन्दर नवतमाल। नव कमल महा नव नव रसाल।
नव पल्लव बहुत सुमन रंग। द्रुमवल्ली तम भयो अनंग॥
भँवरा भँवरी भ्रमत संग। यमुन करति नाना तरंग।

प्रकृति के कोमल वर्णन में वर्षा का भी वर्णन देखिए—

गगन गरजि घहराइ जुरी घटा कारी।
पवन झकझोर चपला चमकि चहुँ ओर।
सुवन तन चितै नन्द डरत भारी।
कह्यो वृषभानु को कुँवरि सो बोलिकै।
राधिका कान्ह घर लिये जा री॥

ऐसे बावर सजल, करति अति महाबल,
चलत घहरात करि अन्ध काला।
चकित भये नन्द, सब महा चकित भये,
चकित नर नारि हरि हरत ख्याला॥
घटा घनघोर, घहरात, आरात,
दरात, सरात ब्रज लोग डरपैं।
तड़ित आघात तरात, उतपात,
सुनि नारि सकुचित तनु प्राण आपैं॥

उक्त पद में वर्षा के भयङ्कर रूप का चित्र खींचा गया है। ऐसा अनुभव होता है मानो वर्षा हो रही हो।

(घ) प्रकृति मानव क्रिया-कलाप की पृष्ठ-भूमि—इस विषय में भी प्रकृति के दो रूप होते हैं। एक में वह मानव क्रीड़ा के लिए परिस्थिति को सजाती है तथा दूसरे में मानव क्रीड़ा में भाग लेती है। इन दोनों रूपों में ही वह मानव की सहयोगिनी होती है। प्रकृति दूसरे रूप में वेदना व्यथित हृदय की अनुभूति होती है। पृष्ठभूमि के निर्माण की बात निम्न पद में देखिये—

आज निशि शोभित शरत सुहाई।
शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहै रोम-रोम सुखदाई॥
यमुना पुलिन पुनीत परम रुचि रचि मण्डली बनाई।
राधा वाम अङ्ग पर कर धरि मध्यहि कुँवर कन्हाई॥

निम्न पद में प्रकृति मानव से होड़ करती हुई दिखाई देती है—

अद्भुत कौतुक देखि सखी री, श्री वृन्दावन में होड़ पड़ी।
उत घन उदित सहित सौदामिनी, इतहिं मुदित राधिका हरी री॥
उत बग पाँति शोभित इत सुन्दर धाम विलास सुदेश खरी री।
वहाँ गर्ज घन इहां ध्वनि मुरली जलधर इत उत अमृत भरी री।
इतहि इन्द्रधनु उत बन माला अति विचित्र हरि कंठ धरी री॥

(ङ) अलंकारों के रूप में प्रकृति का चित्रण—

अलंकारों के रूप में प्रकृति का प्रयोग सूरसागर में अनेक स्थलों पर हुआ है। सूर ने प्रायः उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और रूपकांतिशयोक्ति से ही भावों

का ध्यंजन किया है। प्रत्यक्ष रूप से इनसे प्राकृतिक दृश्यों की छटा भी अंकित हो गई है। निम्न पद में रूपक अलंकार द्वारा दृष्टि के बहाने सरिता का सम्पूर्ण दृश्य उपस्थित किया गया है

चितवन रोकेहू न रही।

श्याम सुन्दर सिन्धु सन्मुख सरित उमंग बही ।।
लोल लहर कटाच्छ घूँघट पट करार ढ़ही।
थके पल पथि नाव धीरज परति नहि न गही ।।

उक्त सभी उदाहरणों को देखकर हम कह सकते है कि सूर ने प्रकृति के शुद्ध रूप को ही ग्रहण किया है।

प्रश्न ११—सूरदास की रचनाओं के मूल स्रोत्रों का निर्देश कीजिए।

उत्तर—महाकवि सूरदास आचार्य वल्लभ के अनन्य शिष्य एवं प्रतिभाशाली कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में जो कुछ लिखा है वह अपनी कल्पना की सहज शक्ति से ही लिखा है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार आचार्य जी ने उन्हें एक ही रात में सारे भागवत की अनुक्रमणिका कहकर "लीलाभेद" वताया था और तभी से उन्होंने भक्ति के नव-पथ को अपनाकर कृष्ण काव्य को अमर बना दिया। यह तो हमने कह ही दिया है कि सूरदास आचार्य वल्लभ के शिष्य थे। उनकी कृपा से ही उन्होंने सूरसागर की रचना की। उस पर श्रीमद्भागवत का भी प्रभाव है। कवि ने स्वयं कहा है....

श्री मुख चारि श्लोक दिये ब्रह्मा को समुझाई।
ब्रह्मा नारद सों कहे नारद व्यास सुनाई ।।
व्यास कहे शुकदेव सों द्वादश स्कन्ध बनाई।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाई ।।

× × ×

जैसे शुक्र को व्यास पढ़ायो, सूरदास तैसे कहि गायो।
सूर कह्यो भागवत् अनुसार,···· ···· ···· ···· ···· ।।

इन कथनों के होते हुए भी सूरसागर को भागवत् का अविकल अनुवाद नहीं कहा जा सकता, उसमें भागवत् के दशम् स्कन्ध की कथा की ही प्रधानता है, फिर भी वह स्वतन्त्र रचना है। बालक कृष्ण व बालिका राधा के साथ खेलने के प्रसङ्ग व भ्रमरगीत की व्यंग्यमयी उक्तियाँ भागवत् में ढूढ़ने पर भी नहीं मिलेंगी। निर्गुण व सगुण का झमेला भी भागवत् में नहीं दिखाई देता जो सूरसागर के भ्रमरगीत का प्रधान अंश है। इसके अतिरिक्त भागवत् सर्ग, निसर्ग आदि दश विषयों का वर्णन कर.ा हुआ भक्ति को प्रमुख स्थान देता है, पर सूरलागर में मुख्य रू.ा से राधा कृष्ण लीला को ही प्रधानना दी गई है। अतः सूरसागर भागवत् का अक्षरशः अनुवाद नहीं। कलेवर की दृष्टि से भी कुल ४५७२ पदों मे दशम् स्कन्ध पूर्वार्द्ध में ३९३६ पद हैं। अन्य स्कन्धों में, ४, ८, १२, ११२, १७२ आदि ही हैं। दशम् स्कन्ध पूर्वार्द्ध में कृष्ण लीला का दृष्टिकोण भी भागवत् से भिन्न ही है। भागवत् में वह परब्रह्म व भूभार हरने वाले हैं। यहाँ कृष्ण का लीला रूप है पर उस लीलारूप के पीछे भी उनका ब्रह्मत्व छिपा है। इतना होते हुए भी हमें यह कहना ही पड़ेगा कि सूरसागर के कृष्ण भागवत के ही कृष्ण हैं, महाभारत के नीति-विशारद या गीता के योगेश्वर नहीं। सूरसागर के दशम् स्कन्ध में भी भ्रमरगीत आदि के प्रसङ्ग पर कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। भागवत् के अतिरिक्त सूरदास जी ने ब्रह्माण्ड पुराण व वामन् पुराण से भी कथायें ली हैं। ब्रह्माण्ड पुराण का उल्लेख सारावली तथा वामन पुराण का उल्लेख दशम् स्कन्ध में है।

श्री सूरदासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के अनुयायी थे। इस प्रकार इनकी दार्शनिक भावना भी शुद्धाद्वैत मत से प्रभावित है। शङ्कराचार्य के अद्वैत मत के विरोध में ही रामानुजाचार्य, विष्णु स्वामी, मध्व तथा निम्बकाचार्य ने सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा की थी। इन तीनों महात्माओं की भक्ति में भी रूपतः कुछ भेद है। सूरदास पर विष्णु स्वामी का प्रभाव इस रूप में अधिक दिखाई पड़ता है। भगवान् शङ्कराचार्य ने ब्रह्म को निराकार एवं माया को साकार-सा बताया था किन्तु विष्णु स्वामी इस मिथ्या माया को मानते ही नहीं। ब्रह्म माया के कारण नहीं प्रस्तुत स्वतः ही साकार है। ब्रह्म

से ही त्रिगुणात्मक सृष्टि होती है, ब्रह्म व उसके रचित संसार में कोई भेद नहीं। भगवान् तो विश्व में अपनी शाश्वत लीला में लीन रहते हैं। सूर ने भी प्रधानतया इसी रूप को अपनाया। निम्बार्क के द्वैताद्वैत का भी प्रर्याप्त प्रभाव सूर पर है। निम्बार्क मतानुयायी चैतन्य महाप्रभु ने भक्ति की सुरसरि प्रवाहित की। इनके मतानुसार प्रकृति व जीव इसी ब्रह्म के गुण हैं। आनन्द उसका मूल है। ये राधा में ही दिव्य प्रेमानुभूति करते थे। निम्बार्काचार्य ने कृष्ण भक्ति में राधा की प्रतिष्ठा विशेष रूप से की। उन्होंने राधा को कृष्ण की शाश्वत पत्नी के रूप में स्वीकार किया। महात्मा सूरदास जी ने राधा को स्वकीया के रूप में ही चित्रित किया।

श्रीमंत् शङ्कराचार्य के मायावाद का भी प्रभाव सूर पर है। यद्यपि शुद्धाद्वैती होने से माया का स्थान उसमें नहीं होना चाहिए था। फिर भी उन्होंने "माधव जू मेरी इक गाई" या "माधव जू नेकु हटको गाई" आदि पदों में माया के अनेक स्वरूपों का कथन किया है।

कृष्ण काव्य में सरलता, कोमलकान्त पदावली एवं गेयता के कारण कवि-वर जयदेव विशेष प्रसिद्ध हुए। उसका गीत-गोविन्द का काव्य-तत्त्व सब का आकर्षण केन्द्र रहा, सूरदास जी में भी गीत-पद्धति, शब्द चयन, भावलावण्य आदि अनेक स्थानों पर गीतगोविन्द का प्रभाव है, पर यह प्रभाव ही है, अनुकरण नहीं। साहित्य लहरी में भी काव्य शास्त्रीय दृष्टि से जयदेव की ही पद्धति के अनुसार है। सारावली भी एक स्वतन्त्र रचना है। सूरसागर एवं सारावली में कुछ मौलिक एवं सैद्धान्तिक भेद भी हैं।

अन्त में सार रूप में यही कहा जा सकता है, सूरदास जी ने दार्शनिक व काव्य शास्त्रों के मत का अनुसरण तो किया किन्तु वे उसके पचड़े में अधिक नहीं पड़े, उन्हें तो भगवान् के साकार रूप का ही गान करना था। उन्होंने कृष्णलीला का स्मरण भावना वर्णन अपनी भक्ति-भावना के ही अनुकूल किया। उन्हें किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन की भी आवश्यकता इसके लिये प्रतीत न हुई। वस्तुतः इसकी रचनाओं के मूलस्रोत में इनकी प्रतिभा ही अधिक थी, बाह्य आधार कम।

प्रश्न १२—सूरदास की भक्ति पद्धति का सामान्य परिचय दीजिऐ।

उत्तर—सूर काव्य के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं, भक्ति पक्ष और काव्य पक्ष। जहाँ केवल भक्ति भावना ग्रहण करने की बात है, अव्यभिचारिणी भक्ति है, वहाँ काव्य किस कोटि का है? यह प्रश्न ही नहीं उठता; किन्तु उच्चकोटि काव्य निश्चिय ही भक्ति भावना को अधिक ऊँची भूमि पर प्रतिष्ठित करने में सहायक होगा। यहाँ हम सूरदास जी की भक्ति का आदर्श देखेंगे।

सूरदास की भक्ति के आलम्बन श्रीकृष्ण हैं, स्वयं सूरदास जी उस भक्ति के आश्रय हैं, कृष्ण के रूप-गुण-लीलाऐं आदि उद्दीपन विभाव हैं। सूर के कृष्ण अविगत हैं, मानववाणी से अगम हैं वे परब्रह्म हैं। उनके कृष्ण गोपियों से स्वयं कहते हैं—

को माता को पिता हमारे।
कब जनमत हमको तुम देख्यो, हाँसी लगत सुनि बात तुम्हारे॥

किन्तु सूरदास जी जानते हैं कि निर्गुण, अनादि, अनन्त से भक्ति संवन्ध जोड़ा नहीं जा सकता। वे गोपियों से कहलाते हैं—

कान्हा कहाँ की बात चलावत।
स्वर्ग पाताल एक करि राखौ युवतिन को कहि काह बतावत॥

गोपियों की भाँति ही सूरदास जो परब्रह्म श्रीकृष्ण की अनुमोदनता स्वीकार कर लेते हैं और कहते हैं—

अविगत-गत कहु कहत न आवै।
जों गूँगेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै॥
परम स्वादु सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै॥
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिन निरालम्ब कित धावै।
सब बिधि अगम विचारहिं तातें सूर सगुन लीला पद गावै॥

अतः सूरदास जी परब्रह्म कृष्ण को पहिचानते हुए भी उनके सगुण रूप के रहस्यात्मक स्वरूप की कल्पना से परिचालित हैं। भगवान् भक्त के लिये ही अवतार धारण करते है। यही लीला का महत्व है—

भक्त हेतु अवतार धरयो ।
धर्म कर्म के वश में नाहीं जोग जग्य मन में न करो ।।
दीन गुहारि सुनौ श्रवणनि भरि गर्व वचन मुनि हृदय जरयो ।
भाव अधीन रहौ सब ही के और न काहू नेक डरौं ।।
ब्रह्म कीट आदि लों व्यापक सबको सुख दै दुखहि हरौं ।

भक्त और भगवान का तो प्रेम व भाव का नाता है जिसे दोनों को अपनी अपनी ओर से निभाना है । भक्त अनन्य भाव से भगवान को प्रेम करता है । उनकी भक्ति अनन्य कोटि की है । उन्होंने कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को स्वयं स्वीकार किया है ।

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै ।
....

सूरदास प्रभु काम धेनु तजि छेरी कौन दुहावै ।।

× × ×

श्याम बलराम को सदा गाऊँ ।
श्याम बलराम बिनु दूसरे देव को स्वप्न हूँ माँहि नहिं हृदय ल्याऊँ ।
इस भक्ति की गहराई का अनुमान सूर के निम्न पद से ही होजाता है
तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान ।
छूटि गये कैसे जन जीवत ज्यों पानी बिन प्राण ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके पदों में भक्ति की अनन्यता एक दम स्पष्ट है, किन्तु फिर भी यदि हमें शास्त्रीय पद्धति से देखना है तो उसे हम विनय व सख्य दो नामों से पुकारेंगे ।

ऊपर हमने जो भक्त का भगवान् के प्रति दृढ़ प्रेम दिखाया है; उसका रूप है, आत्म-समर्पण और शरणागति भाव—

जो हम भले बुरे तो तेरे ।
तुम्हें हमारी लाज बड़ाई विनति सुनु प्रभु मेरे ।
सब तजि तुम सरनागत आयो, दृढ़ करि चरन गहे रे ।।

× × ×

तुम तज और कौन पै जाऊँ ।
काके द्वार जाइ सिर नाऊँ पर हाथ कहाँ बिकाऊँ ।।
ऐसो को दाता समरथ जाके दिये अघाऊँ ।
अन्तकाल तुम्हरें सुमरन गति अनत कहूँ नहिं पाऊँ ।।

किन्तु भक्त की ओर से चेष्टा करने से ही सब कुछ नहीं हो जाता । इष्ट-देव की भी कृपा तो चाहिए । सूरदास इसी कृपा के आकाँक्षी हैं । यहाँ इसी कृपा को "पुष्टि कहते हैं" जिससे भक्तों का पोषण होता है । सत्य बात तो यह है कि इस कृपा के बिना भक्ति अंकुरित ही नहीं हो सकती । सूरदास ने अपने **विनय के पदों में** भगवान की इस अनुकम्पा व भक्त-बत्सलता का गुणगान किया है । इस अनुकम्पा में विश्वास के बिना भक्ति एक पद भी आगे नहीं बढ़ सकती ।

परन्तु साधना के अन्त में भक्त मुक्ति चाहता है ? नहीं ! वह तो केवल भक्ति की ही याचना भगवान से करता है—

अपनी भक्ति देहु भगवान् ।
कोटि लालच जो दिखावहुँ नाहिनें रुचि आन ।।

इस भक्ति के कई साधन हैं । जिनमें नाम संकीर्तन प्रधान है । कहा भी है—"कलौ केशव कीर्तनात्" सूरदास ने इस भाव को लेकर कहा है—

जो तू राम नाम धन धरतौ ।
अब को जनम, आगिलौ तेरो दोऊ जनम सुधरतौ ।।
जम को त्रास सबै मिट जातौ नाम तेरो परतौ ।
× × ×
सूरदास बैकुन्ठ पैंठ में कोउ न फेंट पकरतौ ।।

संकीर्तन साधन के अतिरिक्त भक्ति के साधन निम्न प्रकार से हैं....(१) गुरुभक्ति, (२) लीलागान, (३) नित्य और नैमित्तिक कर्म, (४) भगवान के रूप का ध्यान ।

गुरुभक्ति,—पुष्टिमार्ग में गुरु व ब्रह्म का एक ही स्थान है । गुरु ही जीव का सम्बन्ध ब्रह्म से कराता है । भक्त गुरु को ही कृष्ण मान उसे आत्म समर्पण कर देता है । जब सूर का अन्त समय था उस समय 'श्री चतुर्भुजदास जी ने कहा कि आपने और तो सब गाया किन्तु महाप्रभु के यश का वर्णन

नहीं किया । उस समय उन्होंने यही उत्तर दिया कि मैंने तो सारा ही आचार्य महाप्रभु का गुण गाया है । जो उन्हें (कृष्ण) से बिलग देखता तो बिलग ही गाता, फिर सूरदास जी ने प्रस्तुत पद गाया—

भरोसो इन दृढ़ चरनन केरो ।
श्री बल्लभ नखचन्द्र छटा बिनु सब जग माँहि अँधेरो ॥

लीलागान के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि समस्त सूरसागर ही लीलागान है । भगवान् के बाल व किशोर रूप का ध्यान भी सूरसागर में सैंकड़ों परिस्थितियों में देखा गया है । उदाहरण स्वरूप देखिये—

सखी री नन्द नन्दन देखु ।
धूल धूसरि जटा जूटलि हरि किये हर भेषु ॥
नील पाट पुरोइ मणिगण फणिज धोखे जाई ।
खुन खुनाकर हँसत मोहन नचत डौंरु बजाई ॥

× × × ×

सूर जानते हैं कि उनके इष्टदेव लौकिक नायक नहीं हैं । यह बात वे पाठक को भी बता देते हैं । उनकी सुन्दरता की रहस्यमयता की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं—

सखी री सुन्दरता को रङ्ग ।
छिन छिन माँह परत छवि और कमल नयन के अङ्ग ॥
श्याम सुभग के ऊपर वारौं आली कोटि अनङ्ग ॥
सूरदास कछु कहत न आवै गिरा भई मति पंगु ॥

भगवान के प्रति भक्त की रीति होती है । वह पाँच प्रकार की है—शांत, प्रीति, प्रेम, अनुकम्पा, कांता या मधुरा । इनमें शान्ति, भक्ति का रूप शांत प्रीति का दास्य, प्रेम का सख्य, अनुकम्पा का वात्सल्य एवं कांता या मधुरा का मधुर (श्रृङ्गार) है । सूरदास की भक्ति में सभी प्रकार की भक्ति के उदाहरण पर्याप्त मिलते हैं । हम आरम्भ से भी कह चुके हैं कि शास्त्रीय पद्धति से देखें तो इन की भक्ति के दो रूप हैं विनय एवं सख्य । उक्त पाँचों प्रकार की भक्तियों में कुछ का समावेश विनय में एवं कुछ का सख्य में हो जाता है ।

(१) सर्वप्रथम शान्ति भक्ति आती है, जिसमें वैराग्य की प्रधानता है,

किन्तु यह वैराग्य संसार के प्रति ही रहेगा। इष्टदेव के नहीं। अतः इस का कोई मूल्य भी नहीं। विनय के पदों में ही ऐसे उदाहरण हैं देखिये—

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे।
सुनि मन, कहौं पुकारि तोसों हों, भजि गोपालहि मेरे।
यह संसार-विषय-विष-सागर रहत सदाबस घेरे।
सूर श्याम विनु अन्तकाल में कोउ न आवत नेरे॥

महाप्रभु बल्लभाचार्य से मिलने के पूर्व जब कि वे गउघाट पर रहते थे, इसी दास्य भाव के पद बनाया करते थे। दास्य भक्ति में विनय व दैन्य की प्रकाशन की प्रधानता है। दैन्य का भाव देखिये—

प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ।
और पतित सब द्यौस चारि को, हौं तो जनमत ही कौ॥

निम्न पद में दास्य भाव देखिये—

रे मन कृस्न नाम कहि लीजै।
गुरु के वचन अटल करि मानों साधु समागम कीजै।

सूर की यह दास्य भावना भगवान् के पास पहुँचने का साधन मात्र है। भगवान की शक्ति पाने पर तो उन्हें पाप का किंचित् भी भय नहीं रह जाता।

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै हम हीं कै तुम ही माधव आपुन भरोसे लरिहौं।
× × ×
अब हौं उधरि नयन चाहत हौं तुम्हें बिरद बिनु करिहौं।

(३) सख्य भक्ति—पुष्टिमार्ग में भगवत् लीला का महत्वपूर्ण स्थान था। वल्लभाचार्य को दैन्य प्रधान भक्ति प्रिय नहीं थी। यह तो उनके सूर से मिलने के समय से ही स्पष्ट है। उनकी भक्ति में लीला कीर्तन आदि को विशेष स्थान था, वे सखा भाव से ही कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करते थे। इसलिए सूरसागर में भी सखा भाव की भक्ति के पद भरे पड़े हैं।

सख्य भक्ति सूरसागर में दो रूपों में प्रकट हुई है। एक गोपों और ग्वालों के प्रसङ्ग में। इसी में प्रेम-अनुकम्पा व मधुर का सम्मिश्रण है। दूसरे, सारा ही सूरसागर सखा भाव से गाया गया है। भक्त भगवान् की प्रत्येक लीला

में—चाहे वह गोप्य भी क्यों न हो, विश्वस्त मित्र की भाँति भाग लेता हैं। यही कारण है कि इस भक्ति में उन्हें औचित्य की सीमा लाँघने का भी ध्यान नहीं रहा, लज्जा की तो बात ही क्या ? एक उदाहरण देखिये—

नींवी ललित गही यदुराई।
जबहि सरोज धरो श्रीफल पर तब यशुमति तहँ आई।

× × ×

ऐसे जनि बोलहु नन्द लाला।
छाँड़ि देहु अँचरा मेरो नीके जानत हौं श्री बाला।।
बार-बार मैं तुम्हें कहति हौं परिहैं बहुत जंजाला।
जोवन रूप देखि ललचाने अबहिं ते ए ख्याला।
तरुनाइ तन आवन दीजै कित जिय होत बिहाला।
सूरदास उर ते कर टारहु टूटै मोतिन माला।

मधुर भक्ति—भगवत् विषयक रति का सर्वोच्च विकास मधुरा रति में है जो मधुर भक्ति की जननी है। इस भावा के उपासक राधा-कृष्ण और कृष्ण गोपियों के प्रेम में सम्मिलित होकर उनकी लीलाओं में आनन्द लेते हैं। यद्यपि आचार्य बल्लभ ने वात्सल्य भाव को ही एकमात्र उपादेय माना था और वे बालकृष्ण के उपासक थे; किन्तु पुष्टि मार्ग के कवियों ने सख्य और मधुर भाव को ही अपनाया। माधुर्य भाव को तो विशेष रूप से ग्रहण किया है। मधुर भाव की विशेषताओं के विषय में हम यह कह सकते हैं कि—

(१) भगवान् व भक्त का इतना नैकट्य होता है कि जितना पति-पत्नी का। भक्ति की सर्वोच्च दशा में वह परकीय भाव का अनुभव करने लगता है—

जब ते सुन्दर बदन निहार्‌यौ।
मात पिता पति बन्धु सजन जन तिनहूँ को कहिबे सिर धार्‌यौ।।
मात पिता पति बन्धु सजन जन तिनहूँ को कहिबे सिर धार्‌यौ।
रही न लोक लाज मुख निरखत दुसह क्रोध फीको करि डार्‌यौ।।
ह्वै वो होय सो होय करमबस अब जी को सब सोच निवार्‌यौ।
दासी सूरदास परमानन्द भलो पोच अपनो न बिचार्‌यौ।।

(२) कृष्ण भक्त के संयम के स्थान पर मन को कृष्ण की ओर उन्मुख करता है—

मन तोसों किती कही समुझाई ।
नन्द नन्दन के चरण कमल भजि तजि पाखंड चतुराई ।
सुख सम्पति दारा-सुत, हय गज झूठ सबै समुदाई ।
छन भंगुर यह सबै श्याम बिनु अन्त नाँहि सँग जाई ।।

अतः मधुर भाव के उपासकों के लिये इन्द्रियों के नियमन का प्रश्न ही नहीं रहा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरसागर में भक्ति के अङ्गों की पूर्णतः पुष्टि है । इन प्रसङ्गों के वर्णन में ही उनकी भक्ति भी सन्निहित हो गई है ।

प्रश्न १३— 'सूर साहित्य में रसराज (श्रृङ्गार) के प्रत्येक अंग को स्पर्श किया गया ।" इस उक्ति को समीक्षा कीजिये ।

उत्तर—यदि भाषा काव्य का कलेवर है, तो रसपूर्ण कथन काव्य की आत्मा है । काव्य शास्त्र के आचार्यों ने सरस काव्य को ही वास्तविक काव्य बतलाया है । जिस काव्य में रस नहीं, वह शब्दाडम्बर मात्र है । सूरदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सर्वत्र रसपूर्ण कथन प्रचुर परिमाण में मिलते हैं ।

रसों में शृङ्गाररस प्रमुख है, इसे रसराज के नाम से व्यवहृत किया जाता है, जिसका पूर्ण परिपाक सूर के काव्य में हुआ है । शृङ्गार रस के संयोग एवं विप्रलम्भ दो पक्ष होते हैं । सूरदास ने दोनों प्रकार के शृङ्गार का ऐसी विदग्धता से वर्णन किया है कि पाठक का मन तन्मय होकर भावलोक में विचरने लगता है । आचार्यों ने शृङ्गारिक कथन के जितने अङ्ग बताये हैं, सूरदास के काव्य में उनका पूर्णरूपेण समावेश है । हिन्दी साहित्य में शृङ्गार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया है तो वह सूरदास जी ने ।

उनकी उमड़ती हुई वाग्धारा उदाहरण रखने वाले कवियों के समान गिनाये हुए संचारियों से बंधकर चलने वाली न थी । यदि हम केवल सूर के

विप्रलम्भ शृंगार तथा भ्रमर गीत को ही देख लें तो न जाने कितने प्रकार की मानसिक दशायें ऐसी मिलेंगी, जिनके नामकरण तक नहीं हुए हैं। इसी को कवि की पहुँच कहा जाता है "जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि" यह उक्ति यहाँ चरितार्थ होती है। सूरदासजी ने जीवन के परिमित क्षेत्र शृंगार व (वात्सल्य) पर ही अपनी कलम चलाई है, इन्हीं में उनकी पहुँच इतनी है जितनी अन्य किसी कवि की नहीं—तुलसीदास की भी नहीं—बात यह है कि सूर को गीतकाव्य की जो परम्परा जयदेव व विद्यापति से मिली थी, वह शृङ्गार की ही थी। दूसरी बात उपासना के स्वरूप की है। बल्लभाचार्य ने भक्ति मार्ग में भगवान का प्रेममय स्वरूप प्रतिष्ठित करके उसके आकर्षण द्वारा "सायुज्य मुक्ति" का मार्ग दिखाया था। प्रेम भाव की चरम सीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है। आचार्य वल्लभ के अनुयायी कृष्ण भक्ति कवि भी इस बात को लेकर चले। उक्त प्रेम तत्त्व की पुष्टि में ही सूर की वाणी मुख्यतः प्रयुक्त हुई है।

शृङ्गार रस गोपियों एवं कृष्ण तथा राधा-कृष्ण को लेकर अभिव्यक्त हुआ है। गोपियों और कृष्ण के प्रेम प्रसंग में अलौकिकता का भी समावेश हुआ है, पर राधाकृष्ण का प्रेम पूर्ण रूप से मानवीय है, उसमें अलौकिकता को अधिक स्थान नहीं मिला। पीछे हम सूर के वात्सल्य का चित्रण कर चुके हैं। वृन्दावन में उसी हास-परिहास एवं सुखमय जीवन के बीच गोपियों के प्रेम का उदय होता है। गोपियाँ कृष्ण के दिन प्रतिदिन खिलते हुए सौन्दर्य और मनोहर चेष्टाओं को देख मुग्ध होती चली जाती हैं, उनके मन में विकार उत्पन्न होने लगता है—

मेरे हियरे माँझ लगौ मनमोहन ले गो मन चोरी।
अबहि इहि मारग ह्वै निकसे छबि निरखत तृनतोरी॥

सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूप लिप्सा व साहचर्य दोनों का योग है। बाल-क्रीड़ा सखा-सखी आगे चलकर यौवन-क्रीड़ा के सखा-सखी हो जाते हैं। गोपियों ने तो उद्धव से स्पष्ट शब्दों में कहा "लरिकाई को प्रेम कहौ, अलि, कैसे छूटै? गोपियों के प्रेम का विकास अस्वाभाविक रूप से नहीं

प्राकृतिक रूप से हुआ। रूप का आकर्षण भी बाल्यावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। राधा व कृष्ण के मिलन में इसी भाव को देखिए—

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
गये श्याम रवि तनया के तट, अङ्ग लसति चन्दन की खोरी॥
औचक ही देखी तहं राधा, नैन विशाल भाल दिये रोरी।
सूर और श्याम देखत ही रीझै, नैन नैन-मिलि परी ठगोरी॥

और राधा को देख कृष्ण पूछते हैं—

पूछत श्याम, कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तू बेटी? देखी नाहिं कहुँ ब्रज खोरी।
"काहे को हम ब्रज तन आवति? खेलत रहत आपनी पौरी।
सुनति रहत श्रवन नँद ढोटा करत रहत माखन दधि चोरी॥
"तुम्हारो कहा चोरि हम लै हैं? खेलन चलौ संग मिलि जोरी
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि बातन भुरइ राधिका भोरी।'

इस खेल-खेल में ही राधा-कृष्ण के हृदय में प्रेमांकुर पैदा हो गया।

हम पहले कह चुके हैं कि शृङ्गार और वात्सल्य के क्षेत्र में सूर की समता को और कोई कवि नहीं पहुँच सका। शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं मिलता। वृन्दावन में कृष्ण व गोपियों का सम्पूर्ण जीवन क्रीड़ामय है तथा वह सम्पूर्ण क्रीड़ा संयोग पक्ष है। संयोगावस्था में राधा ने सबसे अधिक आनन्द पाया है। अक्रूर के साथ कृष्ण जब मथुरा चले जाते हैं, तो गोपियों की विरह दशा का विस्तृत चित्रण किया है। राधा भी उसमें एक हैं पर उनका प्रेम अन्य गोपियों की अपेक्षा गम्भीर है। वह अन्य गोपियों की भाँति कृष्ण को दोष नहीं देना चाहतीं, वह अपने को ही दोषी मान लेती हैं, तथा अपने व्यक्तित्व को कृष्ण के साथ की हुई लीलाओं में केन्द्रित कर लेती हैं। भाव यह है कि विरहिणी गोपियों व राधा में भेद है। भ्रमरगीत के प्रसंग में राधा को चित्रपट से हटा कर सूर ने यह भी व्यञ्जित कर दिया है। उनका प्रेम कृष्ण से अधिक निकट है और वह अन्य गोपियों के प्रेम से अधिक गम्भीर है। अब हम कुछ संयोग व वियोग शृङ्गार का चित्रण करेंगे।

इस आकर्षण के पश्चात् संयोग पक्ष के जितने भी क्रीड़ा विधान हो सकते हैं, सूर ने सभी लाकर एकत्र कर दिये हैं। पनघट-प्रस्ताव, कुंज-विहार, यमुना स्नान, जलकेलि समय पीठ मर्दन, गो दोहन के कृष्ण का राधा के मुख पर दूध की छीटें फेंकना, भरे आंगन में संकेत द्वारा वार्तालाप करना, घर के पीछे घरिक तथा वन में खिलना, हिंडोले पर झूलना, रासि नृत्य आदि न जाने संयोग के कितने प्रसंग सूर ने लिखे हैं। एक प्रसंग की मार्मिकता देखिये। आँगन में माता-पिता, स्वजन, परिवारिक बन्धु आदि सब विद्यमान हैं। लोक लज्जा और वेद मर्यादा के प्रतिहार द्वारपाल भी पहरा दे रहे हैं। पलक रूपी कपाट बन्द कर कुल-प्रतिष्ठा की ताली से धैर्य रूपी ताला भी द्वार पर लगा रखा है; किन्तु अन्तस्तल के अत्यन्त गुप्त कोने में रखा राधा का मन-धन नेत्र मार्ग से हृदय में प्रविष्ट हो कृष्ण ने चुरा ही तो लिया। इसी चोरी का अद्भुत चित्रण सूर ने कितनी विचित्रता से किया—

मेरो मन गोपालन हरियौरी।
चितवन ही उर पैठि नैन मग न जानौ धौं कहाँ करयोरी॥
मात-पिता, पति सजन जन सजि आंगन सब भवन भरयोरी।
लोक वेद प्रतिहार पहरूआ तिनहूँ पै राख्यो न परयोरी॥
धर्म धीर कुल कानि कुंजिकरि तारौ दे द्वार धरयोरी।
पलक कपाट कठिन उर अन्तर इतेहु जतन कछुवै न सरयोरी॥
बुधि विवेक बल सहित सच्यो पचि सुधन अटल कबहुँ न टरयोरी।
लियो चुराइ चितै सजनी सूर सो मो तन जात जरयोरी॥

सूर का संयोग क्षणित घटना नहीं, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती हुई धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता। राधा कृष्ण के परस्पर आकर्षण व मिलन का परिचय हम ऊपर दे चुके हैं कि किस प्रकार यमुना के किनारे खेल-खेल में ही वे मिले इस के बाद दोनों एक दूसरे के घर आने जाने लगे हैं। अब तो नित्य ही प्रेम लीलाएँ होती हैं। गोदोहन के समय का एक चित्र देखिये—

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी॥

× × ×

तुम पै कौन दुहावै गैया ?

इत चितवन उत धार चलावत, एहि सिखयो है मैया ?

राधा के बार-बार कृष्ण के घर आने पर यशोदा उसे कहती है कि तू यहाँ क्यों आती है ? राधा का उत्तर देखिये—

बार-बार तू ह्याँ जनि आवै ।
"मैं कहाँ करौं सुतहि नहिं बरजति, घरतें मोहि बुलावै ।
मोसों कहत तोहि बिनु देखे रहत न मेरो प्रान ।
छोह लगन मोको सुनि बानी, महरि तिहारो आन ॥"

कितनी सीधी सादी और भोली व्यंजना है । इसमें सूर का सारा ही संयोग वर्णन प्रेम चर्चा है, रासलीला, दानलीला, मानलीला आदि सब उसके अन्तर्भूत हैं, संयोग के एक-दो उदाहरण और देखिये—

नन्द कुमार कहा यह कीनों ?
बूझत तुमहि कहौ धौं हमसों ।
दान कियो कि मन हरि लीनो ॥

× × ×

विहरत हैं यमुना जल श्याम ।
राजत हैं दोहू बाँह जोरी दम्पति अरु ब्रज बाम ।
कोउ ठाढ़ी जल जनु जंघ लौं कोउ कटि हृदय ग्रीव ।
यह सुख बरणि सकै ऐसे को सुन्दरता तो सींव ॥

कृष्ण की मुरली पर कही हुइ उक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं । सूर ने इन पंक्तियों में सम्बन्ध भावना का अच्छा परिचय दिया है कृष्ण के प्रेम ने गोपियों में इतनी सजीवता भर दी है कि कृष्ण ती क्या, कृष्ण की मुरली तक से छेड़-छाड़ करने का उनका जी चाहता है । देखिये—

माई री ! मुरली अति गर्व काहू बदति नहिं आज ।
हरि के मुख कमल देखु पायो सुखराज ॥

मुरली तऊ गोपालहिं भावति ।

सुनि, री सखी ! जदपि नन्दनन्दहिं नाना भाँति नचावति ।

राखति एक पाँव ठाढ़ौ करि अति अधिकार जनावति ।

सूर प्रशन्न जानि एकौ छिन अधर सुसीस डुलावति ॥

यह तो हुई संयोग पक्ष की बात । वियोग पक्ष के अन्तर्गत भी सूर ने अनेक दशाओं का वर्णन किया है । उद्धव के ब्रज में आने से पूर्ण वियोग-चित्रण में विरह की एकादशी दशाओं का चित्रण हुआ है । बाद के प्रसङ्ग (भ्रमरगीत) में तो प्रेम की अनन्य तन्मयता ही सर्वत्र प्रतिध्वनित होती है । जितनी निपुणता एवं रसिकता के साथ सूर ने संयोग शृङ्गार का वर्णन किया है, उतनी ही दक्षता एवं मग्नता के साथ विप्रलम्भ का भी । जो व्यापकता: विस्तार एवं गम्भीरता संयोग के अन्तर्गत आने वाली मनोदशाओं के चित्रण में हुई है, वही वियोग वर्णन में भी पाई जाती है । सूखी विरह दग्ध गोपियों एवं राधा के साथ लतायें जल रही हैं, यमुना विरह ज्वर से काली पड़ गई हैं, गौयें कृष्ण विरह में क्षीण एवं कृशगात हो गई हैं और ब्रज की शस्यश्यामला भूमि सुनसान एवं वीरान हो रही है । सूर के हृदय का जो स्पन्दन वियोग वर्णन में हुआ मानो समस्त विश्व उसमें योग दे रहा है । सूरसागर में इस वियोग का सफल चित्रण है । इस क्षेत्र में सूर की समता करने वाला कोई अन्य कवि नहीं दिखाई देता । विरह की यह वेदना गम्भीर; तीव्र एवं तड़पा देने वाली है । कृष्ण मथुरा जाने वाले हैं । ब्रजवासियों के लिए कृष्ण वियोग का यह प्रथम अवसर है । कृष्ण के चलने और उसके पश्चात् उनकी जो दशा हुई, वह कठोर हृदय को भी द्रवित कर देने की शक्ति रखती है । भावुक सूर की बात ही क्या ?

कृष्ण के रथ पर बैठते ही "महरिपुत्र कहि शोर लगायो तरु ज्यों धरनि लुटायो ।" यशोदा तो "पुत्र-पुत्र" चिल्लाती धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी और अन्य गोपियाँ चित्रलिखी सी स्तब्ध खड़ी रह गईं । कोई किसी से बोलता नहीं । सबके मुँह फीके पड़े हैं । आँखों से लगातार आँसू बह रहे हैं । सब व्याकुल, बेचैन लुटे से हैं—

रहीं जहाँ सो तहाँ सब ठाढ़ी ।
हरि के चलत देखियत ऐसी मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी ।।
सूखे बदन, स्रवत नैनन तें जलधारा उर बाढ़ी ।
कन्धनि बांह धरे चितवत द्रुम मनहुँ बेलि दव डाढ़ी ।।

घर जाने के लिए उनके पैर नहीं बढ़ते । नेत्र आगे न देख पीछे ही देखते हैं । जब मन ही कृष्ण के साथ चला गया तो नेत्र और पैर यहाँ कैसे रह सकते हैं । गोपियों के लिये जो घर कृष्ण की विद्यमानता में स्वर्ग का नन्दन बना था, वही कृष्ण के वियोग में उन्हें काटने दौड़ता है—

अरी मोहि भवन भयानक लागै माई श्याम बिना ।
सूरदास मोहन दरशन बिनु सुख सम्पति सपना ।।

कृष्ण के चले जाने पर सायं, प्रभात तो उसी प्रकार होते हैं, पर "मदगोपाल बिना या तन की सब बात बदली ।।" ब्रज में पहले सायंकाल का जो दृश्य देखने में आता था, वह अब नहीं दिखाई देता; पर मन से उसकी "स्मृति" नहीं जाती—

एहि बिरियाँ बन ते ब्रज आवते ।
दूरहि ते वह बेनु अधर धरि बारम्बार बजावते ।।

आनन्द देने वाले पदार्थ भी वियोग में दुःख के ही पोषक होते हैं—

बिन गोपाल बैरिन भई कुन्जैं ।
तब ये लता लगति अति शीतल अब भईं विषम ज्वाल की पुन्जैं ।।

+ + +

पवन, पानि, घनसार, सँजीवनी दधि सुत किरन भानु भईं भुन्जैं ।।

अपने इसी उजड़े और नीरस जीवन के मेल न होने के कारण वृन्दावन के हरे-भरे कुन्जों को भी कोसती हैं—

मधुवन ! तुम कत रहत हरे ?
विरह वियोग श्यामसुन्दर के ठाड़े क्यों न जरे ?
तुम हौ निर्लज लाज नहि तुमको फिर सिर पुहुप धरे ।
ससा स्यार और बन के पखेरू धिक्-धिक् सबन करे ।।

कौन काज ठाड़े रहे वन में काहे न उकठि परे ?

इसी प्रकार कृष्ण के बिना काली रात सापिणी-सी लगती है—

पिय बिन साँपिन काली रात ।
कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया डसि उल्टी ह्वै जात ।।

कृष्ण के बिना अखों में आँसुओं की झड़ियाँ लगी हैं—

निसि दिन बरसत नैन हमारे
सदा रहत पावस ऋतु हमपै जबतें स्याम सिधारे ।।
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भये कारे ।
कंचुकि नहिं सूखति सजनी, उर बिच बहत पनारे ।।

कभी बादल अपने प्रकृत रूप में बरसने आते हैं तो वे उन्हें कृष्ण से अधिक दयालु दीखते हैं—

बरु ये बदराऊ बरसन आये ।

अपनी अवधि जानि नन्दनन्दन, गरजि गगन घन छाये ।।

मूर्छा का एक उदाहरण देखिये—

जबिहिं कह्यो ये श्याम नहीं ।
परीं मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहँ रहीं सु तहीं ।।

कहाँ तक वर्णन करें ? अन्त में यही कह सकते हैं कि सूर ने श्रृङ्गार की किसी भी दशा को छोड़ा नहीं । सचमुच सूर "सूर" हैं ।

प्रश्न १४—काव्यकला की दृष्टि से सूर काव्य की समीक्षा कीजिए सूरदास के काव्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए ।

उत्तर—सूरदास यद्यपि अपने काव्य के महत्व के कारण हिन्दी कवियों के मुकट मणि माने जाते हैं, तब भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है उन्होंने अपने काव्य की रचना कवि के दृष्टिकोण से नहीं की । उसके समग्र काव्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ज्ञात पहले भक्त हैं, बाद में कवि । वे अपने इष्ट की भक्ति में तल्लीन होकर जो कुछ उन्होंने गाया है, वह भक्तिसाहित्य की सर्वोत्तम कृति है, किन्तु साथ ही काव्य कला के भी समस्त गुण

उसमें विद्यमान हैं। इसके कारण उनके काव्य का महत्व और भी अधिक हो गया है। कला मानवीय चेष्टा है। चेष्टा यही कि मानव ज्ञान पूर्वक कुछ संकेतों द्वारा उन भावों को प्रगट करता है, जिनको उसने अपने जीवन में साक्षात्कार किया है। इन भावनाओं का दूसरे पर प्रभाव पड़ता ही है। वस्तुतः 'कला उस साधन का नाम है, जिससे कलाकार अपने हृदय के भावों को तद्वत् दूसरों के हृदय में पहुचाता है।' यदि हम सिद्धान्त समीचीन है तो सूरदास की कविता का कलापक्ष भी अत्यन्त पुष्ट है। सूर ने अपने काव्य के विषय का साक्षात्कार किया था, वे उसके अत्यन्त निकट थे, सूर की कला के बाह्य और आन्तरिक दोनों रूप पुष्ट हैं।

हिन्दी कवियों में दो प्रकार के कवि पाये जाते हैं। इनको भाव-पक्षीय एवं कला-पक्षीय के रूप में विभाजित किया जाता है। साधारणतया भक्ति-काल के कवि भाव-पक्ष तथा रीतिकाल के कवि कला-पक्ष के कवि कहे जाते हैं। सूरदास यद्यपि भाव पक्ष के कवि हैं तथापि उनकी भाव रूपी भागीरथी में कला रूपी कालिन्दी भी जा मिली है। इस संगम के फलस्वरूप उनका काव्य अतीव आनन्ददायक हो गया है। यहाँ हम सूर की काव्य-कला की विवेचना करेंगे। साधारणतः हम सूर के समस्त पदों को अधोलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं।

क—विनय के पद दास्य व आत्म-समर्पण।

ख—कृष्ण की मधुरा-भक्ति।

ग—कृष्ण की बाल लीला का प्रसंग।

घ—राधा-कृष्ण का प्रेम प्रसंग।

ङ—कूट पद, रस निरूपण, नायिका भेद व अलंकारों को स्पष्ट करने वाले पद।

सूर के वाह्यांग में वैयक्तिकता, सरलता और सत्यता तीन आवश्यक गुण मिलते हैं। इन गुणों ने उनके भावपक्ष को और भी पुष्टि व प्रभावशाली बनाया है। उन्होंने सूर साहित्य में आत्मीयता की उत्पत्ति की है।

सूर के काव्य का वाह्य रूप—कलापक्ष का विवेचन हम रस से ही आरम्भ करेंगे। वैसे तो सूर सागर में प्रायः सभी कोमल रसों का विस्तार से वर्णन

किया है एवं कठोर रसों का संक्षेप में; पर विनय के पदों में शान्त रस एवं शेष में वात्सल्य एवं श्रृङ्गार का प्राधान्य है। सूर वस्तुतः शान्त, वात्सल्य एवं श्रृङ्गार के ही कवि हैं। शेष रह जाते है वीर, रौद्र, भयानक, करुण, वीभत्स एक बात ध्यान देने की है कि सूर का काव्य ही ऐसे ढङ्ग का है कि उसमें भयानक व वीसत्स जैसे रसों के लिये स्थान ही नहीं हो सकता। वीर और रौद्र भी केवल प्रासङ्गिक कथा के साथ ही आ सकते थे। उन्हें यह रस अच्छे भी नहीं लगते थे। वे तो केवल मधुर भाव के भक्त थे। वीर रस का वर्णन इन्द्र-गर्व-हरण और कंस-चाणूर-बध आदि प्रसङ्गों में है। असुर बध की लीलाओं में अद्भुत रस कहा जा सकता है। यशोदा को विराट् रूप दर्शन भी अद्भुत रस में आ सकता है। इन रसों के वर्णन में सूर की मौलिकता के दर्शन अवश्य होते हैं। किन्तु इनका परिपाक न हुआ। करुण रस विप्रलम्भ का ही अंश बन गया है। नन्द-यशोदा के वियोग चित्रण में इसका वर्णन हुआ है। इन रसों के कुछ उदाहरण लीजिये—

शान्त—सूर साहित्य में अनेक रसों का वर्णन होने पर भी उसकी आत्मा शान्त-रस है। वहाँ भक्त सूरदास अपने प्राकृत रूप में हमारे सामने आते हैं। उस समय वे कवि अधिक नहीं केवल विनयशील भक्त हैं। भक्ति रस का एक उदाहरण देखिये—

अब के माधव मोहि उधारि।
मगन हौं भव अम्बु निधि में कृपासिन्धु मुरारि॥
नीर अति गम्भीर माया लोभ लहर तरङ्ग।
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनङ्ग॥

संसार की अनित्यता के सम्बन्ध में एक पद देखिये—

हरि बिन कोऊ काम न आयो।
यह माया झूठी प्रपंच लगि रतन सो जनम गँवायो॥

वात्सल्य—आचार्य वल्लभ ने बालकृष्ण को इष्टदेव के रूप में उपस्थित किया है। कृष्णलीला पर तो उन्होंने इतना बल दिया कि इतना और किसी ने नहीं दिया। कृष्ण की बाललीला का सम्बन्ध विशेष रूप से यशोदा एवं नन्द से था। काव्य में जब कृष्ण का बाल-चरित्र पूर्णरूप से विकसित हुआ भतीवात्सल्य रस की प्रतिष्ठा हुई। वात्सल्य का एक उदाहरण देखिये—

लाला हों वारी तेरे मुख पर ।
कुटिल अलक, मोहन मन विहँसन, भ्रकुटि विकट नैनन पर ॥

अथवा

सिखवति चलन जसोदा मैया ।
अरबराइ करि पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरै पैया ।
कबहुक सुन्दर वदन विलोकति, उर आनन्द भरि लेत बलैया ॥

वात्सल्य रस के चित्रण के अनन्तर नवीनता, व्यापकता और रस की अनेक दशाओं के निरूपण की दृष्टि से शृङ्गार का स्थान महत्वपूर्ण है। उसका विस्तार वात्सल्य से भी अधिक है। शृङ्गार के दोनों पक्ष—संयोग वियोग का चित्रण सूर ने सफलता से किया है। पिछले प्रश्न में हमने इसका विशद रूप से चित्रण कर दिया है। एक-दो उदाहरण देखिये—

हिंडोला माई झूलत हैं गोपाल ।
संग राधा परम सुन्दरि चहूँघा ब्रज बाल ॥

या –नवल किसोर नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने ऊपर धरिया ।
क्रीड़ा करत तमाल तरुनतर, स्यामा-स्याम उमँग रस भरिया ॥

यह तो संयोग का उदाहरण हुआ। एक वियोग का देखिये—

सुपने हरि आयों हौं किलकी ।
नींद जो सौति भई रिपु हमको सहि न सकी रति तिल की ।
जो जागो तो कोउ नहिं रोके रहति न दिल की ।
तब फिर जानि भई नख शिख तें, दिया बाति जनु मिलकी ।

हास्य—सूर ने अनेक स्थानों पर हास्य की भी सुन्दर सृष्टि की है। इस हास्य में शिष्टता और मर्यादा है। एक उदाहरण देखिये—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसों कहत मोल को लीन्हों तोहि जसुमति कब जायो ॥
कहा कहौं यहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु ।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु ॥

गोरे नन्द यशोदा गोरीं तुम कत श्याम शरीर।
चुटकी दै दै हसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर ।।
तू मोही को मारन सीखी दाहुहि कबहुं न खीजै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि यशुमति पुनि-पुनि रीझै ।।
सुनहु कान्ह बल भद्र चबाई जनमत को ही धूत।
सूर श्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ।।

अद्भुत—अद्भुत रस ने प्रसंग कवि के सीधे भागवत से लिए हैं। उन में मौलिकता नहीं पर जहाँ भी ये प्रसंग आए हैं, रस का परिपाक बड़ी निपुणता से हुआ है —

कर गहि पग अँगूठा मुख मेलत।
प्रभू पौढ़े पालने अकेले हरषि-हरषि अपने रङ्ग खेलत ।।
सिव सोचत विधि बुद्धि विचारत वट बाढ्यो सागर जल झेलत।
बिडरि छले घन प्रलय जानिके दिगपति दिग दंतिन न सकेलत ।।

भयानक—चरन गहे अँगूठा मुख मेलत।
उछलत सिंधु धराधर काँप्यो,कमठ पीठि अकुलाई ।।

वीर—सैन साजि ब्रज पर चढ़ धावहि।
प्रथम बहाइ देहुँ गोवर्धन ता पाछै ब्रजगोदि बहावहि ।।

करुण—अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरि श्रम जल अन्तर तनु भीजै ता लालच न धुवावति सारी ।।

काव्य की कलात्मकता अथवा उसकी चमत्कारिक शैली के विवेचन के लिए अलंकार विशेष सहायक होते हैं सूर के काव्य में अलंकारों के सर्वोत्कृष्ट रूप का समावेश है। इनकी अलंकार योजना केशव आदि की भाँति साध्य नहीं प्रत्युत वह भाव-पक्ष की अभिव्यंजना का साधन मात्र है। सूर के अलङ्कारो में उसके दोवों प्रकार—शब्द व अर्थ का चित्रण है। शब्दालंकारों में उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, प्रतीप आदि । कहीं-कहीं विभावना व वक्रोक्ति आदि के दर्शन भी होते हैं। कूट पदों में श्लेष और यमक का प्राचुर्य

हैं परन्तु यहाँ कवि का ध्येय रसोद्रेक नहीं चमत्कार है। अलंकारों के कुछ उदाहरण देखिए—

यमक—हरि सम आनन हरि सम लोचन हरितह हरिअर आगी।
हरि हि चाहि हरि न सोहावये हरि हरि कर उठि जागी॥
अनुप्रास—अल्प दशन कलबल कर बोलनि।
उपमा—बने हैं विसाल कमल दल नैन॥
रूपक—नन्दनन्दन वृन्दावन चन्द।
जदु कुल नभ तिथि द्वितिय देवकी प्रकटे त्रिभुवन वंद॥
उत्प्रेक्षा—लोचन जनु थिर भृङ्ग अकार। मधुमाताल कियँ उड़इ न पार,
विभाजन—मुरली तउ गोपालहि भावत।
सुनरी सखी जदपि नन्दनन्दनहि नाना भाँति नचावति॥

सूरदास की एक विशेषता उनका रूप सौन्दर्य है। सूर ने अधिकतर राधा-माधव के ही सौन्दर्य का वर्णन किया है—क्योंकि वही उसके उपास्य हैं। सूर के कृष्ण सुन्दरता के सागर हैं "देखो माई सुन्दरता को सागर" उनके रूप सौंदर्य का वर्णन कवि करते हैं—

सुन्दर बोलत आवत बैन।
ना जाने तेहि समय सखी री सब तन स्रवन की नैन॥
रोम-रोम में शब्द सुरति की नखसिख ज्यों चख ऐन।
ऐती मान बनी चंचलता सुनी न समझी सैन॥
जब तक जाकि ह्वै रही चित्रसी पल न लगत चित चैन।
सुनहु सूर यह साँच कि विभ्रम सपन किथों दिन रैन॥

सूरसागर की सर्वोत्कृष्टता उसके पदों का गीत माधुर्य है। आचार्य शुक्ल का कहना है कि सूरसागर किसी प्राचीन समय से चली आती हुई गीत-पद्धति का विकसित रूप हैं। कुछ भी हो, सूर के पदों का गीतिमाधुर्य छन्द, शब्द चयन, भाव सौंदर्य, व्यंजना और अर्थ-माधुर्य इन सभी काव्याङ्गों के मेल से सुन्दर बन गया है। सूर का शब्द चयन भी अद्वितीय है। उन्होंने उसमें माधुर्य को कहीं भी अपने हाथ से नहीं जाने दिया। प्रत्येक अवसर पर उन्होंने भाव-रस के उपयुक्त ही शब्दों का चयन किया है। यथा

मधुकर काके मीत भये ।
दिवस चारि की प्रीति सगाई रस ले अनत गये ।।

भाव—भाव-सौन्दर्य सृष्टि और अर्थ व्यंजना भी सूर की उत्कृष्ट हुई है। सूर के गीतों की एक विशेषता उनका भाव सौन्दर्य भी है। यह पाठक और श्रोता के मन में ऐसे घर कर जाता है कि देखते ही बनता है। गोपियाँ ऊधो से तर्क नहीं करतीं; उनके सामने कृष्ण के साथ अतीत सम्बन्ध की स्मृति छा जाती है। वह कहती हैं—

एक दिवस हरि अपने हाथन कर्णफूल पहिराये ।
दे मोहन माटी के मुक्ता मधुकर हाथ पठाये ।।
बेनी सुभग गुही कर अपने हाथन चरणन जावक दीनो ।
कहा कहौं वा स्याम सुन्दर सों निपट कठिन मन कीनो ।।

इस पद में पहले मधुर व्यवहारों की स्मृति से मधुर भाव की सृष्टि हो जाती है फिर अन्तिम पद तक आते-आते कृष्ण की निठुरता की व्यंजना होती है, यही सूर काव्य की श्रेष्ठता है।

सूर जहाँ अत्यन्त मौलिक और प्रभावशाली दिखाई पड़ते हैं, वह है मधुर भाव की व्यंजना। भ्रमरगीत में तो व्यंग्यार्थ ही उनके प्राण है। कवि ने कहीं शब्द मात्र से, कहीं संकेतमात्र से और कहीं केवल पद-ध्वनि से ही व्यंजना की सृष्टि की है। उपालम्भ के भीतर प्रेम की व्यंजना करने में वे अद्वितीय हैं। गोपियाँ यशोदा को उपालम्भ देती हैं—

तेरो लाल मेरो माखन खायो ।
दुपहर दिवस जानि घर सूनो ढूँढ़ि ढँढोरि आपहि आयो ।।
खोल किवार सूने मन्दिर में दूध दही सब सखन खबायो ।
सीके काढ़ि खाट चढ़ि मोहन कछु खायो कछु लै ढरकायो ।।
दिन प्रति हानि होति गोरस की यह ढोठा कौने ढंग ढायो ।
सूरदास कहती ब्रज नारी पूत अनोखे जायो ।।

इस पद में पिछली पंक्तियों में जहाँ क्रोध और उलाहना है, वहाँ अन्तिम पंक्ति उलाहना देने वाली की आँखों में हँसी और हृदय में प्रेम की

अभिव्यंजना करता है। एक "अनोखे" शब्द ने ही सारे वाच्यार्थ को बदल दिया है।

सूरदास की कविता का एक प्रधान गुण चित्रमयता भी है। सारे-सूरसागर में सहस्रों सौन्दर्यपूर्ण चित्र अङ्कित किये हैं। वे चित्रों के बिना सोच ही नहीं सकते। भाव, रस, भक्ति आदि सभी का उन्होंने चित्र उतारा है। विरही ब्रज का एक चित्र देखिए—

ब्रज के बिरही लोग दुखारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाड़े अति दुर्बल तन कारे ॥

भाषा—सूरदास की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रज भाषा नहीं। उनकी भाषा बोल-चाल की प्रवाहपूर्ण और सरस है। (१) उसमें रसों को प्रस्फुटित करने की शक्ति है, (२) वाच्यार्थ के अतिरिक्त वह व्यंग्यार्थ को भली भाँति प्रकट करती है। (३) वह भाव की अनुयायिनी है। सूरदास हमारे सामने कवि, भक्त व गायक इन तीनों रूपों में आते हैं। उनकी भाषा भी तीनों रूपों में बदली हुई आती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्यपक्ष प्रौढ़ है। वास्तव में वे हिन्दी साहित्य जगत के "सूर" हैं।

प्रश्न १५—सूरसागर में प्राप्त यशोदा व नन्द का चरित्र चित्रित कीजिए।

उतर—सूरदास के काव्य में यशोदा व नन्द वात्सल्य भक्ति के प्रतीक हैं। यशोदा स्नेहमयी-माता एवं नन्द स्नेही पिता के रूप में ही सर्वत्र दिखाई देते हैं। इन दोनों का चित्रण हम पृथक्-पृथक् ही करेंगे।

यशोदा—यशोदा में सूरदास ने मातृ-हृदय का अपूर्व रूप चित्रित किया है। उससे माता शब्द सार्थक हो जाता है। वह कृष्ण की बाल लीलाओं में व्याप्त रहती हैं। कभी उसे पालने में झुलाती हैं। नींद नहीं आती तो थपकियाँ देकर सुलाती हैं—

यशोदा हरि पालनै झुलावै।
लहरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै ॥

मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुलावै।
तू काहे नहिं वेगि-सी आवै तो को कान्ह बुलावै॥

यह प्रत्येक क्षरण अपनै मन को बाल कृष्ण में केन्द्रित कर देती हैं। कृष्ण ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं, उसके आनन्द का पारावार नही रहता। उसे चिन्ता है कि वे कब घुटने से चलने लगेंगे, कब उनके दाँत निकलेंगे।

"कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे यहि कहि विधिहि मनाव।"
कबहिं दंतुली द्वै दूध की देखौं इन नैननि॥

यशोदा का यह चित्रण प्रत्येक सामान्य स्त्री का सा है, इसी में सूर की विशेषता है। यशोदा कृष्ण के प्रत्येक क्रिया-कलाप से सुख पाती है। खाने पीने के सम्बन्ध में कृष्ण को कभी भुलावे भी देती है "कजरी को पय पियहु लला तेरी चोटी बढ़ै।" कृष्ण बन में दूर जाते हैं तो उनको शङ्का होती है कि गाय उन्हें मार न दे। वह प्रत्येक ग्वाल व गोपी को कृष्ण को सौंपती हैं। उनके वापिस लौटनै तक द्वार पर खड़ी उनकी प्रतीक्षा करती रहती हैं। "आवहु कान्ह साँझ की बिरियाँ" जब कृष्ण मिट्टी खा लेते हैं उस समय का माता यशोदा का रूप देखिये—

मोहन काहे न उगिलौ माटी।
बार-बार अनरुचि उपजावत महरि हाथ लिये साँटी।
महतारी को कह्यो न मानत कपट चतुरई ढाटी।
वदन पसारि दिखाइ आपने नाटक की परिपाटी॥
बड़ी बार भई लोचन उघरे भ्रम जामिनि नहिं फाटी।
सूरदास नन्दरानि भ्रमत भई कहत न मीठी खाटी॥

कृष्ण की चंचल प्रकृति ने ब्रज की समस्त गोपियों को परेशान कर रखा था। वे उनके दधि माखन की चोरी ही नहीं करते थे वरन् उनके "गोरस भाजनों" को भी तोड़ डालते थे। गोपियाँ यशोदा के पास जाकर शिकायत करती थीं, किन्तु सरल प्रकृति एवं स्नेहमयी माता को यह विश्वास ही नहीं होता था कि उनका अबोध बालक इस प्रकार की शरारतें कर सकता है। कई बार तो गोपियों ने कृष्ण का अपराध भी प्रमाणित कर दिया; किन्तु यशोदा ने गोपियों को समझा बुझाकर टाल दिया। उनकी समझ में यह बात नहीं

आती थी कि जब उनके घर में गोरस का भण्डार है तो उनका कन्हैया दूसरों के यहाँ चोरी करने क्यों जाता है ? जब कृष्ण का यह नटखटपन सीमा से बाहर हो गया और मां कृष्ण को समझाकर हार गईं तो उन्हें क्रोध आ गया और रोषपूर्वक उनके हाथों को रस्सी से बाँध उन्हें ऊखल से बाँध दिया और स्वयं हाथ में सोटी लेकर उन्हें डाटने लगीं, कृष्ण हिचकियां लेने लगे गोपियों ने जब यह देखा तो वे यशोदा से इसके लिये मना करने लगीं और कृष्ण को खोलने की प्रार्थना करने लगीं. इस पर उन्होंने गोपियों को भी खूब झिड़कियाँ दीं, क्योंकि शिकायत लेकर तो वे ही आयीं थीं। यमलार्जुन वृक्ष उखड़े यशोदा ने यह देखा तो कृष्ण को हृदय से लगा लिया और फिर कभी भी कोप नहीं किया। यशोदा का प्रेम इतना पूर्ण है कि उनको कृष्ण के वियोग की जरा भी कल्पना नहीं, अमङ्गल की आशंका भी नहीं; किन्तु जब कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा जाते हैं तो उनके लिये यह असह्य है। वे रो देती हैं—

> मोहन नेक वदन तन हेरो।
> राखो मोहिं नात जननी को मदन गोपाल लाल मुख फेरो।

किन्तु जब उन्हें कृष्ण की ओर से ब्रज में रहने का आश्वासन नहीं मिलता तो वह दुःखित हो जाती हैं और चिल्लाकर कहती हैं—

> गोपालहिं राखो मधुवन जात।
> लाज गये कछु काज न सरि हैं बिछुरत नन्द के तात॥
> रथ आरूढ़ होत बलि बलि गई होई आयो परभात!

कृष्ण के मथुरा में छोड़कर नन्द जब अकेले ब्रज को लौटते हैं तो एक बार फिर उनका कोप जाग उठता है; और नन्द को धिक्कारती हैं—

> यशोदा कान्ह कान्ह कै बूझे।
> फूटि न गई तिहारी चारों कैसे मारग सूझे।
> इक तनु जरो जात बिन देखें अब तुम दीन्हें फूक।
> यह छतियाँ मेरे कुँवर कान्ह बिनु फाटि भई न द्वै टूक।

यह कहते-कहते यशोदा मूर्छित हो जाती हैं। अब यशोदा को बार-बार

कृष्ण की याद आती है। वे नन्द को उन्हें ले आने के लिये कहती हैं। कभी उन्हें मक्खन को देखकर कृष्ण की याद आती है।

कृष्ण का वियोग उन्हें इतना दीन कर देता है कि वे देवकी के सामने कृष्ण की गाय बनना भी स्वीकार कर लेती हैं—

संदेशो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करति ही रहियो।

वह हमेशा ही कृष्ण की याद करती हैं। सोचती हैं कि अब की बार कृष्ण फिर यहाँ आगये तो मैं उन्हें भूलकर भी गाय चराने के लिये नहीं कहूँगी। माखन की चोरी करते हुए भी नहीं बरजूँगी।

मेरो कान्ह कमल दल लोचन।
अबकी बेरि बहुरि फिर आवहु कहा लगे जिय सोचन।
यह लालसा होत जिय मेरे बैठी देखत रहिहौं।
गाय चरावन कान्ह कुँवर सों भूलि न कबहूँ कहियों।

जब उद्धव ब्रज से मथुरा जाने लगे तो उन्होंने कृष्ण के लिये कुछ सन्देश देने के लिये कहा। यशोदा ने शाब्दिक सन्देश देने की अपेक्षा उद्धव द्वारा कृष्ण के पास उनकी मुरली भेजकर जो मूक वेदना व्यंजित की है, उसका अनुभव तो सहृदय पाठक ही कर सकते हैं। वस्तुतः यशोदा के मातृ-हृदय के चित्रण में सूरदास ने कमाल कर दिया है।

नन्द—सूर काव्य के नन्द गोकुल के सम्भ्रांत हैं। वृद्धावस्था होने के कारण वे "नन्दबाबा" कहलाते हैं। इस अवस्था में कृष्ण बलराम जैसे भुवनभूषण पुत्रों को पाकर उनके हर्ष का पारावार नहीं। वैसे सूर ने नन्द के चित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है, किन्तु यशोदा के चरित्र-चित्रण में ही एक प्रकार से नन्द का चित्रण भी हो गया है, किन्तु जैसे नन्द व यशोदा की प्रकृति में नैसर्गिक भेद है। इसी प्रकार का भेद उनके चरित्र में भी हो गया है। कृष्ण के वियोग के समय जबकि यशोदा मूर्छित तक हो जाती हैं, वहाँ नन्द पुरुष होने के कारण कुछ कठोर ही बने रहते हैं। यशोदा नहीं जानतीं कि उनके हृदय में वेदना है और उन्हें उलाहना देती हैं तब वे कुछ विचलित हो उठते हैं। उन्हें मूर्छा आ जाती है। इसके बाद

उनमें वियोग के कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते। वे कृष्ण के वियोग को बड़े धैर्य से सहन करते है।

प्रश्न १६—सूरसागर की मुख्य नायिका राधा का चरित्र चित्रित कीजिये।

उत्तर—सूर काव्य की प्रधान नायिका राधा है। जो परम सुन्दरी गोप बालिका है। उसका वर्ण गौर, उसके प्रत्येक अङ्ग की शोभा अनुपम है। सूर ने अगणित पदों में राधा के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है। सब में राधा के प्रत्येक अङ्ग का विस्तृत वर्णन है किन्तु उसके नेत्रों की छबि का तो अत्यन्त ही उत्कृष्टता से वर्णन किया है।

सूरदास की राधा न चण्डीदास की राधा की तरह परकीया है न विद्यापति की राधा के समान प्रेयसी, न वह साधारण अथवा असाधारण गोपी है। वह तो कृष्ण की पत्नी है। नायिका भेद की परिभाषा में उसे हम स्वकीया कहेंगे।

राधा व कृष्ण से आध्यात्मिक तत्व की व्यंजना सूरदास ने की है उसका वर्णन सूर के दार्शनिक सिद्धान्तों वाले प्रश्न में हम कर चुके हैं। यहाँ हम उसके लौकिक पक्ष का ही चित्रण करेंगे।

एक दिन कृष्ण खेलने निकले वहीं वे राधा को "औचक" ही देखते हैं। वह भी उन्हीं की तरह बालिका है, उन्हीं की तरह सखियों के साथ है! राधा को देखते ही कृष्ण मुग्ध हो गये हैं।

कृष्ण पूछते हैं—तू कौन है? किसकी बेटी है? ब्रज में तो तू दीख नहीं पड़ी। राधा कहती है—मैं ब्रज की ओर क्यों आती? अपने ही पौरी में खेलती रहती हूँ। हां, सुनती रही हूं कि नन्द का लड़का माखन की चोरी करता है। कृष्ण कहते हैं—तुम्हारा हम क्या चुरा लेंगे। चलो साथ खेलने चलें। हमारी, तुम्हारी जोड़ी रही। यहीं से दोनों के मन में प्रेम-पूर्ण-स्नेह उदित होता है। कृष्ण कहते हैं—

खेलन कबहुँ हमारे आबहु नन्दसदन ब्रज गाँवँ।
द्वारे आइ टेर मोहि लीजो कान्ह है मेरो नाउँ॥

जो कहियो घर दूर तुम्हारो बोलत सुनिये टेर।
तुमहिं सौहं वृषभानु बाबा की प्रात साँझ एक फेर ॥
सूधी निपट देखियत तुमकों ताते करियत साथ।
सूरश्याम नागर नत नागरि राधा दोउ मिल गाथ ॥

अब राधा-कृष्ण बालिका-बालक नहीं, वे नागरी-नागर हैं। कृष्ण इशारे में ही राधा से कहते हैं—

खरिक आवहु दोहनी लै यहै मिस छल पाइ।
गाइ गिनती करन जैहैं मोहि ले नन्दराइ ॥

धीरे-धीरे राधा-कृष्ण का प्रेम बढ़ता है। कभी देर से घर जाती है माँ कारण पूछती है तो कहती है खरिक देखने गई थी। कृष्ण के बिना उसको अब अच्छा नहीं लगता। अत्यन्त व्याकुल हो जाती है। माँ से दोहनी मांगती है। और कहती है—

खरिक मांहि अब ही ह्वै आई अहिर दुहत अपनी सब गैया।
ग्वाल दुहत तब गाइ हमारी जब अपनी दुहि लेत ॥
घरिक मोहि लगिहै खरिका में तू आवै जनि हेत।

उधर नन्द भी कृष्ण को लिए खरिक में आते हैं। कृष्ण राधा को देख बुला लेते हैं। नन्द कहते हैं खेलो, दूर मत जाना। मैं गिनती करता हूँ, पास रहना। देखना, वृषभानु की बेटी, कान्ह को कोई गाय न मारे। अब राधा-कृष्ण अकेले हैं। यहीं से सूरदास शृङ्गार-सागर में प्रवेश करते हैं। राधा कहतीं है—नन्द बाबा ने जो कहा वह सुना? अब छोड़ कर गए तो मैंने पकड़ा। अब मै तुम्हारी बाँह नहीं छोड़ूँगी। श्याम कहते हैं—कैसी उपरफट बातें करती है? छोड़।

इस प्रसङ्ग तक सूर ने बाल केलि व प्रेम-लीला का ऐसा मिश्रण कर दिया है कि उनके इस कौशल पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। इसके बाद एक दिन जब आकाश में काली घटायें छा जाती हैं। नन्द इस आंधी-पानी को देख डरते हैं। राधा को बुलाकर कहते हैं—कान्ह को घर लिए जा। राधा कृष्ण बूदों में भीगते-भीगते वन से लौटते हैं—परस्पर सटे-सटे मार्ग में

रति-क्रीड़ा भी करते हैं। यहीं से कृष्ण-राधा के सम्भोग शृङ्गार का वर्णन होता है।

चूमत अङ्ग परस्पर जनु जुग चन्द करत हित धार।
रसन हसन भरि चापि चतुर अति रङ्ग विस्तार॥

फिर एक दिन राधा,कृष्ण के घर आती है—

खेलन के मिस कुँवरि राधिका नन्द महर के आई हो।
सकुच सहित मधुरे करि बोली घद हों कुँवर कन्हाई हो॥
सुनत श्याम कोकिल-सम वाणी निकसे अति अतुराइ हो।
माता सों करत कलह हरि सो डारियो बिसराई हो।
मैया री तू इनको चीन्हति बारम्बार बताई हो।
यमुना-तीर कल्हि में भूल्यो बाँह पकरि ले आई हो।
आवति यहाँ तोहि सकुची है मैं दै सांह बुलाई हो।

यशोदा ने कहा—बुला लो। कृष्ण ने राधा का हाथ पकड़ कर उसे माँ के पास बिठा दिया। यशोदा व राधा में वार्तालाप होता है। यशोदा राधा के माता-पिता का परिचय पूछती है। राधा परिचय देती है कि में वृषभानु की बेटी हूँ। यशोदा करती हैं मैं जानती हूँ उन्हें, बड़े "लंगर" हैं। राधा भी वैसे ही उत्तर देती है—उन्होंने तुम्हें कब छेड़ा? यशोदा हँस कर उसे हृदय से लगा लेती हैं। फिर उसको संवार देती है और खेलने के लिए कहती हैं। एक बार राधा, कृष्ण की मुरली चुरा लेती हैं। कई बार दोनों मान करते हैं, किन्तु फिर वही आँखों की लड़ाई। राधा की माँ उसे उलाहना देती हैं—

काहे को तुम जहँ तहँ डोलति हमको अतिहि लजावति।
अपने कुल की खबरि करौ धौं सकुच नहीं जिय आवति॥

एक बार कृष्ण ने राधा की गौयें दुह दीं। वह लौटती हैं किन्तु लौटा नहीं जाता। अन्त में मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं। सखियाँ सँभाल कर घर लाती हैं। घर जा कर वे कहतीं हैं—इसे श्याम भुजङ्ग ने डस लिया कोई गारुड़ी बुलाओ। गारुड़ी आते हैं, पछता कर चले जाते हैं। सखियों के कहने पर माँ कृष्ण को बुलवाती हैं। स्वयं वृषभानु पत्नी उन्हें बुलाने जाती

हैं। यशोदा के पाँव पड़ती हैं। कृष्ण राधा के पास पहुँचते हैं, उसकी मूर्छा उतर जाती है।

इसके बाद हम राधा को पनघट लीला में अन्य सखियों के साथ पाते हैं—

राधा सखियन लई बोलाइ
चलहु यमुना जलहि जैयै चली सब सुख पाय।,
सबनि एक एक कलश लीन्हों तुरत पहुँची जाइ।
तहाँ देख्यों श्याम सुन्दर कुँवरि मन हरसाय॥
नन्द नन्दन देखि रीझे चितै रहे चितलाय।
सूर प्रभु की प्रिया राधा भरत जल मुसुकाइ॥

दान लीला प्रसङ्ग में भी राधा है—

ब्रज युवति नितप्रति दधि बेचन बनि बनि मथुरा जाति।
राधा चन्द्रावलि ललितादिक बहु तरुणी इक भाँति॥

इसमें राधा का उल्लेख पृथक नहीं हुआ। इसके अनन्तर अनेक गोपियाँ भी कृष्ण की लीला में भाग लेने लगती हैं। गोपियों के साथ कृष्ण अनेक लीलायें रचते हैं। कृष्ण की वन्शी-ध्वनि गोपियों को मोह लेतीं है। वे सब काम-काज छोड़ कृष्ण के पास पहुँचती हैं और उनकी लीला में भाग लेती हैं इस युवती मण्डली में राधा ही प्रधान है। वही कृष्ण की मुख्य नायिका है। रास का वर्णन देखिए—

रास म डल मध्य श्याम राधा।
मनौ घन बीच दामिनी कौंधती, सुभग एक है रूप द्वै नाहि बाधा।
नायिका अष्ट अष्टहु दिशा सोहहीं बनी चहुँ पास गोप कन्या।
मिले सब सङ्ग नहि लखति कोउ परस्पर, वने षटदश सहस कृष्ण सैन्या।
सजे श्रृङ्गार नवसात जगमग रह्यो, अङ्ग भूषण रैनि बनी तैसी।
सूर प्रभु नवल गिरधर नवल राधिका, नवल ब्रज सुता मंडली जैसी।

सूरदास गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेम लीला दिखाते हुए भी दाम्पत्य-प्रेम केवल राधिका में ही दिखाते हैं।

रास के प्रसङ्ग में कृष्ण, राधा के साथ अन्तर्धान हो जाते हैं; परन्तु राधा को गर्व होता है और वह कृष्ण के कन्धे पर चढ़ना चाहती है। फलस्वरूप

कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं और गोपियाँ राधा को एक पेड़ के नीचे बिलखती पाती हैं। उसका गर्व दूर हो जाता है।

कृष्ण एक बार पुनः राधा के विरह में व्याकुल हो जाते हैं। भाँति-भाँति से राधा को मनाना चाहते हैं, किन्तु राधा नहीं मानती—

भरि-भरि अँखियन नीर लेति पें ढारति नाहि अतिरिस,
काँपत अधर करकि करि भृकुटि तानति।

अन्त में कृष्ण मूर्छित हो जाते हैं, किन्तु राधा का मान नहीं टूटता, क्योंकि उसे विश्वास है कि कृष्ण उसके ही हैं—

नाँहि हठि परयौ प्राण बल्लभ सो छूटत नहीं छुड़ाये।
देखो मूरछि परयौ मनमोहत मनहुँ भुजंगिनि खायो॥

यह तो हुई संभोग शृङ्गार की बात। विप्रलम्भ में तो राधा का चरित्र और भी खिल जाता हैं। जिस दिन अक्रूर कृष्ण को मथुरा ले जाते हैं, उस रात राधा को नींद नहीं आती।

आजु रैन नहिं नींद परी।
जागत गनत गगन के तारे रसना रटत गोविन्द हरी॥

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा की जो दशा है, उसका मार्मिक वर्णन देखिये। एक पथिक को मार्ग में देखकर राधा बुला लेती हैं और कहती हैं—

कहियो पथिक जाइ हरि सों मेरो मन अटको नैनन के लेखे।
इहै दोष दै दै भगरत हैं तब निरखत मुख लगी क्यों निमेषे॥
कै तौ मोहि बताय दबकियो लगी पलक जड़ जाके पेखे।
ते अब सब इन पै भरि चाहत विधि जो लिखे दरशन सुख पेखे॥

गोपियाँ जब पंथी के सामने कृष्ण को दोष देती हैं, तब राधा कह उठती हैं—

सखी री हरि को दोष जनि देहु।
ताते मन इतनो दुख पावत मेरोई कपट सनैहु॥

भ्रमर गीत के प्रसङ्ग में राधा का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु ब्रज से लौटने पर उद्धव कृष्ण से कहते हैं, उससे यह स्पष्ट होता है कि उनके

आगमन की बात सुनकर राधा द्वार तक अवश्य चली आई थीं। द्वार पर खड़ी राधा का वर्णन उद्धव ने इस प्रकार किया है—

देखी मैं लोचना चुवत अचेत।
मनहुं कमल शशि भास ईश को मुक्ता गनि गनि देत॥
द्वार खड़ी इकटक मग जोवत अधर श्वास न लेत।
मानहूँ मदन मिले चाहित हैं मुचंत मरुत समेत॥
श्रवण न सुनत चित पुतरी लौं समुझावत जितनेत।
कहुं कंकन कहुं गिरि मुद्रिका कहुं ताटंक कहुं नेत॥
मनहुं विरह दव जरत विश्व सम राधा रुचिर निकेत।
धुज होइ सूखि रही सूरज प्रभू बँधी तुम्हारे हेत॥

वे अन्य गोपियों के समान अपना संदेश भी न दे सकीं, राधा का कण्ठ भर आता है और जब कुछ दिया तो केवल इतना ही—

इतनी बिनती सुनो हमारी।
बारक हूँ पतिया लिख दीजै॥

चरण कमल दरसन नव नौका करुणा सिंधु जगत जस लीजै।
सूरदास प्रभु आस मिलन की एक बार आवन ब्रज कीजै॥

इसके बाद राधा के दर्शन तब होते हैं, जब श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र से लौट रहे हैं, उनके साथ रुकमणी भी हैं। राधा को विश्वास नहीं होता। उनका विरह उनके लिये इतना स्वाभाविक हो गया है कि कृष्ण के निकट आने पर भी उनकी प्रतीक्षा से अधीर हो जाती हैं एवं मिलन पर भी विश्वास नहीं करतीं। रुकमणी के पूछने पर कृष्ण उन्हें राधा को दिखाते है। राधा पूछती हैं—

हरि जी इतै दिन कहाँ लगाये ?
तबहिं अवधि में कहत न समुझी गनत अचानक आये॥
भली करी जु अबहिं इत नैनन सुन्दर चरण दिखाये।
"जान कृपा" राज काजहुं हम निमिष नहिं बिसराये॥
बिरहन विकल विलोकि सूर प्रभु धाइ हृदय कर लाये।
कुछ मुसुकाय कह्यो सारथि सुन रथ के तुरंग छुराये॥

इसके अनन्तर रुक्मिणी राधा को अपना लेती है। कृष्ण भी आ जाते हैं।

"राधा माधव भेंट भई"

अन्त में कृष्ण राधा से कहते हैं हम तुम में तो कोई अन्तर नहीं, और उसे व्रज भेज देते हैं। सखी के प्रति राधा के इस वचन से राधा का चित्रण समाप्त होता है —

कहत कछु नाहीं आज बनी।
हरि आए हों रही ठगी सी जैसे चित धनी॥

राधा के चरित्र की विशेषता है, सर्वस्व समर्पण। संयोग व वियोग के अवसरों पर उसने पूर्ण विश्वास किया है, उसने आर्य महिला होने के नाते अपने प्रेमी या पति के दोषों को भी अपने उपर ले लिया है। वस्तुतः राधा का यह चित्रण सूर की सबसे उत्कृष्ट और एवं मौलिक कल्पना है।

प्रश्न १७—विवेचन कीजिये कि सूरकाव्य के मुख्य नायक श्रीकृष्ण का चित्रण अनेक दृष्टियों से हुआ है।

उत्तर—सूरदास के कृष्ण लीला-पुरुष हैं। सूरदास की समस्त लीलायें उन्हीं से सम्बन्धित हैं। वे सूर काव्य के नायक ही नहीं, प्रत्युत सूरदास के आराध्य देव भी हैं, इसलिये कवि ने उनका गायन मनोयोग पूर्वक किया है। सूरकाव्य के समस्त पात्रों में श्रीकृष्ण की प्रधानता ही नहीं, अपितु शेष समस्त पात्रों के चरित्र भी कृष्ण चरित्र से गुथे हुए हैं। सूर काव्य में से कृष्ण चरित्र को निकाल देने से अन्य का कोई भी महत्व नहीं रह जाता। कृष्ण अपनी एक लीला से निकल दूसरी में चले जाते हैं। पुरानी लीला की एक क्षीण स्मृति मात्र उनके मन में रहती है। इतने पर भी वे प्रत्येक लीला में पूर्ण हैं।

सूरदास के कृष्ण परम सुन्दर स्वस्थ एवं चंचल प्रकृति के नटखट बालक हैं। एक समृद्ध ग्रामीण परिवार के बालक की भाँति उनका लालन पालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ है। वृद्धावस्था की सन्तान होने के कारण वे माता पिता के तो दुलारे हैं ही, साथ ही, उनमें ऐसा भी आकर्षण है कि वे व्रज के नर-

नारी तथा पशु-पक्षियों को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं।

श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं के गान में सूर ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। बाल कृष्ण की प्रत्येक चेष्टा का उन्होंने अत्यन्त स्वाभाविक एवं विषद वर्णन किया है। श्रीकृष्ण अपनी लीलाओं से नन्द यशोदा को परम आनन्दित करते हैं। वे नाना भाँति के खेल-कूद और आमोद-प्रमोद द्वारा गोप बालकों को एवं अपने रूप-लावण्य द्वारा गोप-बालिकाओं एवं गोपाङ्गनाओं को उल्लसित करते हैं। वे ब्रज- नारियों के घरों में घुस उनका दधि-माखन चुराकर खा जाते हैं। पनघट या यमुना तट पर उन्हें परेशान करते हैं। वे एकान्त वन में जाती हुई गोपियों को रोक कर उनसे 'दान' माँगते हैं एवं उनके आना-कानी करने पर उनके दधिभाजनों को तोड़ डालते हैं। कृष्ण की इन करतूतों से गोपियाँ रुष्ट भी हैं, पर इससे उन्हें सुख भी मिलता है और उसे अपना अहोभाग्य समझती हैं।

कृष्ण मुरली बजाने की कला में भी अत्यन्त निपुण हैं। जब भी वे मुरली बजाते हैं। समस्त ब्रज़ को आत्म-विभोर कर देते हैं। शरद की ज्योत्स्ना ज्योतित रात्रि में वे नाना प्रकार के गान, नृत्य आदि द्वारा सबका मनोरंजन करते हैं।

उन्होंने अल्पायु में ही बलशाली दैत्यों का संहार एवं खेल-कूद में ही कालि-दमन जैसे साहसपूर्ण कार्य कर डाले। कंस जैसे अत्याचारियों को भी मार डाला। उनके इन्ही दैवी कार्यों से प्रभावित होकर ब्रजवासी उन्हें एक क्षण के लिए भी छोड़ना नहीं चाहते, वे उन्हें अवतारी पुरुष समझने लगते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण साधारण सखा !

जब अक्रूर श्रीकृष्ण को लेने के लिए आते हैं और वे मथुरा जाने लगते हैं, उस समय उनका मन अपके माता-पिता एवं बाल सखाओं से बिछुड़ते तनिक भी बिचलित नहीं होता जबकि समस्त ब्रजवासी आर्तनाद करते हैं। मथुरा में भी कंस को मारने के बाद वे नन्द आदि को वापस भेज देते हैं। स्वयं वहाँ की राजनीति में इतने मग्न हो जाते हैं कि ब्रज के समीप होने पर भी वहाँ नहीं जाते।

कृष्ण की अनुपस्थिति में तो ब्रज की बहुत ही बुरी अवस्था थी। सभी

ब्रजवासी उनके विरह से व्याकुल थे किन्तु कृष्ण को उनकी याद तक न आई। बहुत दिनों बाद उन्होंने अपने मित्र उद्धव को भेज दिया। उद्धव गोपियों को समझाने आये किन्तु स्वयं ही उनके प्रेम-रस में डूब गये। लौटने पर उद्धव ने श्रीकृष्ण को ब्रज की जो दशा बताई उसके सुनने पर भी वे ब्रज नहीं गये।

मथुरा से वे जब बहुत दूर द्वारका गये, तब जाते समय भी ब्रजवासियों से नहीं मिले। वहाँ उन्होंने गार्हस्थ्य सुख का उपभोग किया। द्वारिका के राजा के रूप का वर्णन सूर ने संक्षेप में किया है। सुदामा दारिद्रय-मोचन में उन्होंने उनके दीन-बन्धु स्वरूप का भी दर्शन कराया है, पर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूर का बाल-कृष्ण के स्वरूप के वर्णन के अतिरिक्त किसी भी वर्णन में मन नहीं रमता।

अन्त में कृष्ण को द्वारिका में ब्रज की याद दिलाती है तब वे सूर्य ग्रहण पर्व पर कुरुक्षेत्र जाते हैं। वहों ब्रजवासियों को भी बुलाते हैं। वहीं ब्रजवासियों को कृष्ण-मिलन का सौभाग्य प्राप्त होता है।

समस्त सूरसागर का अध्ययन करने पर श्रीकृष्ण का चरित्र हमारे समक्ष निम्न रूप में आता है—

क—अत्यन्त मुखर बालक के रूप में।

ख—चंचल किशोर के रूप में।

ग—किशोर प्रेमी के रूप में।

घ—क्रीड़ा-कौतुक प्रिय सखा के रूप में।

ङ—तरुण नायक के रूप में।

च—अति प्राकृत अलौकिक सत्ता के रूप में जो अनेक आश्चर्यमयी लीलायें करती हैं, एवं भक्तों की रक्षा करती है।

छ—गौरव-गंभीर महाराज के रूप में।

यद्यपि इसमें कृष्ण के ज्ञानी एवं राजनीतिज्ञ रूप का भी निर्देश हुआ है परन्तु कृष्ण के चरित्र के ये अङ्ग भागवत व महाभारत में भी मुख्य हैं। सूरदास को तो वे—जैसे हम पहले भी कह चुके हैं कि केवल लीलामय शिशु चंचल किशोर प्रेमी के रूप में ही अधिक प्रिय हैं।

संक्षेप में कृष्ण के चरित्र को दो भागों में बाँटा जा सकता है। (१) उनका सामान्य या अलौकिक चरित्र एवं (२) सामान्य या लौकिक चरित्र। प्रथम रूप में सूर ने कोई विशेषता उत्पन्न नहीं की। हाँ, उनका मानवीय चरित्र पूर्व भौतिक है। जिस प्रकार कुरुक्षेत्र से ब्रज आने पर कृष्ण को महाराज के सिंहासन से उतर कर राधा के पास सामान्य प्रेमी के रूप में जाना पड़ा, उसी प्रकार अलौकिक कृष्ण चरित्र सूरदास के लिये एक सामान्य पुरुष का सामान्य चरित्र बन गया है। उन्होंने दो चरित्र अलग-अलग प्रकट नहीं किये। उन्होंने सामान्य व असामान्य का इतना सुन्दर समिश्रण किया है कि उसमें भक्ति और काव्य के विकास के लिए एक साथ ही स्थान मिल सका है।

प्रश्न १८—दृष्टिकूट किसे कहते हैं? सूर के दृष्टकूट किस प्रवृत्ति के सूचक हैं? क्या सूरसागर व साहित्यलहरी के दृष्टकूट विभिन्न व्यक्तियों की रचनायें हैं?

उत्तर—दृष्टकूट एक प्रकार का अलंकार है। इसमें शब्द चमत्कार का शब्दों की क्रीड़ा होती है। कष्ट-साध्य दूरागत अर्थों का चमत्कार उपस्थित किया जाता है। इसमें शब्दार्थों का आधार अभिधा शक्ति होती है। कोष में एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। एक शब्द के अर्थ से दूसरे शाब्दिक अर्थ की प्रतीति और दूसरे से तीसरे अर्थ की, इस प्रकार शृंखला रूप में (अर्थ) प्रतीति होती है। इस प्रकार वांछित अर्थ चमत्कार स्पष्ट हो जाता है। जैसे—

"मन्दिर अरध अवधि हरि बढ़ि गये हरि अहार चलि जात।"

इसमें मन्दिर-मकान उसका आधा पाख-पक्ष-१५ दिन। इसी प्रकार हरिअहार में, हरि शब्द के अनेक अर्थों में एक अर्थ सिंह भी है—सो हरि-सिंह उसका आहार माँस, का उच्चारण परिवर्तन करने पर मास ३० दिन। अतः इस पदांश का अर्थ हुआ कि श्रीकृष्ण ने १५ दिन की अवधि दी थी, पर अब तो महीना भी बीत गया।

ज्ञान और साधना इतने सरल साधारण न हो जायँ कि उनमें विकार आ जाय, इस प्रकार की भावना हमारे देश में प्राचीन काल से चली आती

है। ऋषियों ने इसे वांछनीय समझा कि जिस ज्ञान को उन्होंने अत्यन्त कष्ट से प्राप्त किया है वह उपयुक्त पात्र को ही मिले, ऋग्वेद में बहुत कुछ प्रतीकों के रूप में कहा गया है। नरमेघ व अश्वमेध को मानसिक बलि का प्रतीक बनाया गया।

हिन्दी में इस प्रकार की प्रवृत्ति का परिचय हमें सिद्धों की कविताओं में ही मिल जाता है। कबीर पंथियों ने भी साधना द्वारा प्राप्त ज्ञान को छिपाने के लिये कूटपद कहे ! कबीर की उलट बाँसियाँ तो इस दृष्टि से प्रसिद्ध ही हैं, लोक साहित्य में भी पहेलियाँ मुकरयाँ आदि चलती थीं। उनमें भी कौतुक के लिये कूट उपस्थित किया जाता था। इन्हीं दो उदगामों से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य में यह प्रवृत्ति आई। कुछ ऐसा कहा जाय जिसमें चमत्कार हो, अर्थ छिपाने की चेष्टा हो, पाण्डित्य का प्रदर्शन हो सके। यमकालंकार ने इसमें विशेष सहायता की। भक्ति साहित्य में इस प्रकार का सर्वप्रथम प्रयोग विद्यापति की पदावली में मिलता है—

"हरिसम आनन हरिसम लोचन हरिवर आगी।
हरिहि चाहि हरि-हरि न सोहावए हरि-हरि कए उठि जागी।"

विद्यापति के बाद सूर का साहित्य आता है। उनके दृष्टकूटों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे विद्यापति से प्रभावित थे। अस्तु, हमें अब यह देखना है कि सूर के ये पद किस प्रवृति के सूचक हैं ? कुछ लोग तो इसे सूर की कल्पना विलास मात्र समझते हैं किन्तु बात वास्तव में ऐसी है नहीं। सूक्ष्म दृष्टि देखने पर उनमें कवि की एक विशिष्ट मनोवृत्ति का प्रकाशन हुआ है। सूरदास ने गोपियों की दान लीला में अङ्गों का दान कराया है। इसमें दान की वस्तुओं को गिनाना था। इसी प्रकार ये राधा की माता द्वारा राधा का नखसिख वर्णन कराते हैं। मानवती राधा के रूप की प्रशंसा वे सखियों द्वारा कराकर मिलन की प्रार्थना करते हैं। सूरदास की वाणी से इन वर्णनों का साधारण भाषा में आना उचित न था, इसीलिये उन्होंने इन प्रसङ्गों में कूट शब्दों का प्रयोग किया है। मान की अवस्था में स्पष्ट रूप से कहने में

सखी की धृष्टता होती है। दृष्टकूट शब्दों के द्वारा सखी अपना मन्तव्य कह देती है। राधा और कृष्ण दोनों की अवस्थाओं का गूढ़ार्थ द्वारा ज्ञान हो जाता है। उदाहरण के लिए निम्न कूट को लीजिए :—

राधे हर रिपु क्यों न दुरावति।
सैल सुतापति तासु सुतापति ताके सुतहि मनावति ॥
हरि बाहन सोभा यह ताकी कैसे धरे सुहावति।
द्वै अरु चारि छहौं वै बीते कहु क्यो गहरु लगावति ॥
नौ अरु सात एजु तँहँ सोहत तै तु कहि क्यों दुरावति ॥
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन को श्री रंग-रंग भरि आवति ॥

गोपी राधा से कहती है कि हे राधे! तू मान किए तो बैठी है पर हरिपु=कामदेव को क्यों नहीं छिपाती। सैल सुता=गिरजा उसका पति शङ्कर की सुता लक्ष्मी, उस लक्ष्मी का पति विष्णु=विष्णु का पुत्र कामदेव. [कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न कामदेव का अवतार माना जाता है] तू उसको मानती है। भाव यह है कि तू नित्य प्रति मन में कामदेव का भजन करती है। दो + चार + छः अर्थात् बारह घन्टे बीत चुके हैं, तू देर क्यों लगा रही है। नौ + सात १६ शृङ्गारों से तेरा अङ्ग-अङ्ग शोभित हो रहा है। तेरे अङ्ग में कृष्ण के मिलन का रंग भरा है।

कैसी सुन्दर व्यंजना है। सखी ने राधा के हृदय की प्रेमोत्कटता और कृत्रिम मान को भी प्रकट कर दिया है एवं उसमें राधा की धृष्टता भी नहीं दिखाई गई है।

इसी प्रकार कृष्ण के समक्ष सखी राधिका के नख-शिख का वर्णन करती है रूपकातिशयोक्ति का आश्रय लेकर अत्यन्त सुन्दर काव्य-सौन्दर्य का प्रतिपादन हुआ है—

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीड़त ता पर सिंह करत अनुराग ॥
हरि पर सरवर, सरवर, गिरिवर, गिरिपर भूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसे ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग ॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक-पिक मृद मद काग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग ॥

इन प्रतीकों का अर्थ—गज क्रोड़ा = चाल, सरवर = नाभि, गिरवर=कुच, कंज-कुचाग्र, कपोत=कंठ, अमृतफल=मुख, पुहुप=चिबुक (ठोड़ी) पल्लव = ओष्ठ, शुक=नासिका, पिक=स्वर, खंजन=नेत्र, धनुष=भौंह, चन्द्रमा = मस्तक, मणिधरनाग=सिन्दूर बिन्दु के ऊपर की लट ।

भाव यह है कि—राधा के शरीर का सौन्दर्य एक विचित्र बाग की भांति है, जिसमें दो चरण कमलों के ऊपर गज की सूंड के समान कोमल जंघाएँ हैं। उनके ऊपर सिंह के समान कटि है। कटि पर नाभी और उसके ऊपर वक्ष, तथा वक्ष पर दो कुच हैं। उसके ऊपर कबूतर के समान कोमल और पतली सी गर्दन है तथा गर्दन के ऊपर ठोड़ी है। उसके ऊपर मुख और उस पर पल्लव अर्थात् अधरोष्ठ हैं। उस पर नासिका, कोयल के समान वाली, बिन्दी और बाल हैं, मुख रूपी चन्द्रमा के ऊपर, खंजन पक्षी के समान आँखें और फिर भौंह हैं। उसके ऊपर वेणी है। इस प्रकार चतुर गोपी कृष्ण को राधा के अधामृत का पान करने की प्रेरणा देती है।

रहस्यात्मक सौन्दर्य्य की सृष्टि करने के लिए भी कहीं कूट पदों का प्रयोग हुआ है। निम्न पद में उपमेय को छुपाकर केवल उपमान उपस्थित किए गए हैं और शरीर के अङ्गों का क्रम लेकर उन्हें एक दूसरे के ऊपर अवस्थित कहा गया है। वह कृष्ण का सौन्दर्य चित्रण है—

गृह ते चली गोप कुमारि ।
बरक ठाढ़ो देख अद्‌भुत एक अनुपम मार ।
कमल ऊपर सरस कदली कदलि पर मृगराज ।।
सिंध ऊपर सर्प दोई सर्प पर ससिराज ।
मद्ध ससि के मीन खेलत रूप काँत सुजुक्त ।।
सूर लखि भई मुदित सुन्दर करत आही उक्ति ।

प्रतीकार्थ—कमल = चरण, कदली = जंघा, मृगराज (सिंह)=कमर, सर्प= भुजा, ससिराज=मुख, मीन=आँख ।

भाव यह है कि श्री कृष्ण के चरण कमलों के ऊपर कदली सी जंघा है, जंघा के ऊपर शेर की कमर सी पतली कमर है और ऊपर सर्प के समान दो

भुजाये हैं-और ऊपर चन्द्र सा मुख चमक रहा है, मुख पर मछली की सी सुन्दर आँखें हैं।

अलङ्कार स्पष्ट करने और नायिका भेद का निरूपण करने के लिए भी कूट का प्रयोग किया गया है यही सूर की मौलिकता है। देखिए—

> ठाढ़ी सलज सुता कर लीन्हे।
> दधि सुत वाहन हित सजनी भष विचारवित दीने॥
> को जाने केहि कारण प्यारी सो लख तुरते उठाने।
> चपला औ बारह रस आखर आग देखि झपटाने॥
> तद गुन देख सबै मिल सजनी मन हीं मन मुसुकानी।
> सूर श्याम को लगी बोलावन आपु सयानप मानी॥

इस पद्य में राधा के अज्ञात यौवन का वर्णन है। अज्ञात यौवना में यौवन का प्रादुर्भाव देखकर सखियाँ हँसी और कृष्ण को बुलाने लगीं।

इस प्रकार दृष्टकूट के पदो में कवि सूरदास का एक विशेष प्रयोजन परिलक्षित होता है। वह प्रयोजन है साधन के गोपन का, परन्तु हमें यह जानना भी आवश्यक है कि सूर ने साधना को गोप्य क्यों समझा ? यह हम जानते हैं कि राधा-कृष्ण सूर के साध्य थे। उनका ध्येय राधा-कृष्ण की अनेक भाव-भंगिमाओं, लीला और मुद्राओं पर ध्यान जमाना था। सूरदासजी ने इसे सहज समाधि कहा है। इन कूट पदों में कृष्ण के ऐसे चित्र सुरक्षित हैं जो भक्ति की ध्यान धारणा और समाधि के लिए आवश्यक हैं। इन चित्रों में से कुछ साधारण समाज को कलुषित लग सकते थे, किन्तु भक्त को इनमें कुछ भी बुराई न दिखाई देती थी। फिर भी समाज में उनका निरादर होना सम्भव था। इसलिए उन्हें गुप्त रखा गया। वस्तुतः ये दृष्टकूट सूर की भक्ति भावना और काव्य-कला के मणि-संयोग से सुशोभित है।

साहित्यलहरी के दृष्टकूटों में उक्त प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते। उनमें कवि की आलंकारिक प्रवृत्तियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं। इसमें यमक का प्रयोग विशेषतया हुआ है —

> "सारँग सम कर नीक; नीक सम सारँग सरस बखाने।
> सारँग बस भय, भय बस सारंग, सारँग बिसमें माने॥'?

इसमें सारंग शब्द के हरित, राग सारंग, कृष्ण, कमल, हृदय आदि अनेक अर्थ हैं।

इसी प्रकार, अनेक पदों में श्लेष, परिसंख्या, मुद्रा आदि अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है। यथा—

'भूसुत मेघकाल निसि इनके आदि वरन् चित आवैं।

भूसुत कंज, मेघकाल वर्षा, निसि जामिनी,

इनके आदि वरन अर्थात् कुब्जा कृष्ण के मन में समाई है।

संख्या शब्दों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिये किया गया है। साहित्य-लहरी के निर्माण-काल के विषय में कवि कहता है—

"सुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लखि सुवल संम्वत् पेख॥"

मुनि ७, रसना २, या १, रस ६, गणेशदशन १, के द्वारा और "अङ्कानां वामतो गति" के अनुसार रस का अर्थ हुआ १६२७ या १६१७ इस प्रकार साहित्य लहरी के पदों में भाव की अपेक्षा कला की ही प्रधानता है। भाषा शैली के विचार से तो साहित्य-लहरी सूरसागर की विभिन्न शैलियों में किसी के समकक्ष नहीं रखी जा सकती। साहित्य-लहरी सूरसागर के उन पदों के अनुकरण में रची जान पड़ती है, जिनमें कवि की उच्च कवित्व शक्ति और काव्य कला का उत्कृष्ट प्रदर्शन हुआ है। साहित्य-लहरी की कूट शैली में रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार नहीं प्रत्युत प्रहेलिका अलङ्कार की प्रधानता है। इसी कारण से कुछ विद्वान इसे सूर की रचना नहीं मानते किन्तु हम इसी पुस्तक के एक प्रश्न पर विचार कर चुके हैं कि साहित्य लहरी निश्चित ही सूर की रचना है, उसकी रचना का विशेष हेतु था। अतः पण्डितों का यह सिद्धान्त कि सूरसागर व साहित्यलहरी के दृष्टिकूट दो विभिन्न कवियों के हैं यह ठीक नहीं। इन दोनों के लेखक एक ही हैं और वह हैं सूरदास।

प्रश्न १६—हिन्दी काव्य में पद-साहित्य के विकास को देखते हुए उसमें सूर का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—सूर ने अपनी रचना गेय पदों में की है। सूरसागर की अत्यन्त उत्कण्ठा उसके पदों का गीत माधुर्य ही है। गीतिकाव्य की परम्परा प्राचीन काल से चली आती है। सामवेद के रथन्तरादि गीत यज्ञ के अवसर पर गाये जाते थे। धार्मिक कृत्यों के साथ सामाजिक पर्व और उत्सवों में भी गीतिकाव्यों का प्रचार था। जब समाज में संघर्ष प्रवल हुआ तो गीतिकाव्य भी धार्मिक शान्ति और सामाजिक चहल-पहल को छोड़कर उग्र रूप धारण करने लगे। विरक्ति व विनोद के स्थान पर वे विप्लव एवं विरोध भाव के उत्तेजक वन बैठे ! माधुर्य एवं प्रसाद के स्थान पर उनमें ओज भी भरने लगा। सूर ने जिस युग में अपनी रचना की उससे पूर्व उक्त तीनों प्रकार के गीति काव्य प्रचलित थे। सूर की रचना यद्यपि प्रसाद गुण सम्पन्न एवं माधुर्य भाव मंडित है तथापि उसमें ओज की भी मात्रा विद्यमान है।

सूर ने यह गीति शैली अपने पूर्ववर्ती जयदेव, विद्यापति एवं कबीर आदि से धरोहर के रूप में प्राप्त की और उसे अपनाकर और भी गौरवान्वित किया।

किसी साहित्य में गीत-काव्य की परम्परा वीर-गीतों से आरम्भ होती है। उस समय के कवि अपने आश्रयदाताओं के यशोगान या युद्धोन्मुख वीरों को उत्साह प्रदान करने के लिये वीर गीतों की रचना किया करते थे। देश में वीरता के लोप के साथ ही वीर गीतों की ध्वनि भी मन्द पड़ गयी। इसके अनन्तर सन्त-कवि कबीर आदि ने निर्गुण भक्ति के गीत गाये, जो सूर के समय तक और उसके अनन्तर भी गूंजते रहे। सन्तों के पदों में वाह्य वस्तुओं का वर्णन न होता था, आत्मा को अन्दर ढूढ़ने का ही प्रयत्न उसमें किया गया है, भगवान् के साथ दैन्यभाव का विशेष सम्बन्ध इन पदों में पाया जाता है, पर इन पदों में केवल प्रभु की महिमा ही पाई ग[illegible] है।

सूरदास ने जिस पद्धति का अनुसरण किया वह जयदेव व [illegible]द्यापति से मेल खाती है। जयदेव ने अपने दृष्टिकोण को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

"यदि हरि स्मरणे सरस मनः,
यदि विलास कलासु कुतूहलम्।

सरस-कोमल कान्त पदावलीम्
भज तदा जयदेव सरस्वतीम् ।।"

जयदेव के इस आदर्श को लेकर ही मैथिली कोकिल विद्यापति ने कृष्ण काव्य लिखा उसमें संगीतमयता भरी पड़ी है। यथा—

"नन्दन नन्दन कदम्बक तरुतर
धिरे धिरे मुरली बजाय;
समय संकेत निकेतन बइसल
बेरि बेरि बोलि पठाव ।।"

ये हैं जयदेव व विद्यापति के उदाहरण व आदर्श। सूर ने उन्हीं का अनुकरण किया, जब हम ऐसा कहते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने उनका अन्धानुकरण किया। उनकी अपनी विशेषताओं की मुद्रा सूरसागर के प्रत्येक पृष्ठ पर लगी हैं। जयदेव व विद्यापति से उन्होंने कोमल कान्त पदावली अवश्य ली हैं, पर उसे भी उन्होंने अपने रंग में रंगा है। सूर की रचना में जो व्यंग्य, सजीवता, स्वाभाविकता, चित्रमयता एवं भाव-गम्भीर्य है, वह विद्यापति और जयदेव में कहाँ ? उनका मातृ-हृदय का चित्रण, कृष्ण के बाल-स्वरूप का वर्णन एवं यौवन के नाना रूपों का चित्र अन्यत्र ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा।

सूरदास का अधिकांश काव्य कीर्तन के लिये रचा गया है, इसलिये वह मुक्तक गेय पदों में है। ये गेय पद विभिन्न राग रागनियों में सधे हैं। गीति काव्य की शैली आत्माभिव्यंजन की अतीव उत्कृष्ट शैली है। जिसे भाव की एक-एक शृंखला को सुसज्जित गुलदस्ते के रूप में सजाना है, अपनी अनुभूति का अङ्ग-अङ्ग आकर्षक रूप में प्रकट करना है। उसके लिये गीति काव्य के अतिरिक्त कोई भी शैली उपादेय नहीं। सूर ने इसी शैली में हरिलीला का गान किया है। इस गायन में कौनसी राग व रागिनी है जिसका उपयोग सूरदास ने न किया होगा ? ऐसा कहते हैं कि सूर ने तो ऐसे राग व रागनियों का उपयोग किया है जिनके लक्षण भी अब प्राप्त नहीं है। इसीलिये संगीत काव्य की दृष्टि से भी सूर काव्य का अनुपम महत्व है। एक विद्वान् ने लिखा है कि "संगीत विषयक ज्ञान की कसौटी पर जब सूर कसे जाते हैं, तब वह

बहुत ऊँचे उठ जाते हैं। वास्तव में यदि काव्य और संगीत का सच्चा समन्वय कोई प्रकृत रूप से कर सका है तो वह सूर ही हैं।" इसी सम्बन्ध में सूर व तुलसी की तुलना करते हुए वे ही विद्वान लिखते हैं—'जहाँ तुलसी की संस्कृत पदावली संगीत के माधुर्य को किन्हीं अंशों में कम कर देती है, वहाँ सूर की प्रकृति रूप से प्रसवित होने वाली शब्द लहरी स्वाभाविकता सादगी अल्हड़पन और प्रसाद को समान रूप से लिये आगे बढ़ती है। तुलसी के अनावश्यक रूप से प्रयुक्त बड़े-बड़े रूपक भी संगीतलहरी में अवरोध उपस्थित करते हैं, पर सूर्य के रूपक छोटे, आवश्यकता फबते हुए, सरल आकर्षक और संगीत के लिए उपयुक्त हैं'। इसलिए तुलसी संगीत का वह माधुर्य न ला सके जो उसके लिए आवश्यक है। ऐसा करने में सूर समर्थ हो सके हैं। उन्होंने संगीत की स्वर लहरी को भावुकता, प्रवलता और दक्षता के साथ प्रवाहित किया है। कुछ पदों की गीतात्मकता देखिये—

(क) माई, आजु तो बधाई बाजै, मन्दिर महर के।
फूले फिरें गोपी-ग्वाल, ठहर-ठहर के ॥
फूली धेनु, फूले वाम, फूली गोपी अङ्ग-अङ्ग।
फिर फूले तरुवर, आनन्द लहर के ॥

(गीत में स्थायी की गति शान्ति है, अंतरे की गति तीव्र है। भिन्न चरणों में यति की संख्या व स्थान भेद होने के कारण गीत तल्लीनता को अभिव्यक्त करने के लिए उत्कृष्ट बन पड़ा है)।

(ख) ललिता ललित बजाय रिझावत बीन कर लीनें।
जान प्रभात राग पंचम षट् भाल कोस रस भीने ॥
सूर हिंडोल मेघ मालव पुनि सारंग सुर नट जान।
सुर सावंत भूपाली ईमन करत कान्हरौ गान ॥

सूर सारावली की इन पंक्तियों में संगीतमयता भी है एवं साथ ही राग-रागनियों के नाम भी। सूर के गीति पद अनिवार्यतः गेय हैं। वस्तुतः उनकी रचना जिस हार्दिक प्रेरणा से हुई है, वह मूलतः संगीतमय है। सौन्दर्य और संगीत का नित्य सम्बन्ध हैं। अतः प्रेम की वह गम्भीर अनुभूति जिसका आलम्बन कृष्ण का अनिवर्चनीय सौन्दर्य और माधुर्य है, निश्चित ही संगीत

मय होगी कृष्ण की पूजा आराधना में संगीत का महत्त्व पूर्ण स्थान रहा है। पुष्टि मार्ग की सेवा पद्धति में आठ समय की आरती के विधान के सम्बन्ध में समयानुसार भिन्न-भिन्न रागों का निर्देश किया गया है। प्रारम्भ से ही श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तनकार का पद महत्त्वपूर्ण रहा है। आचार्य बल्लभ ने सम्भवतः पहले पद कुम्भनदास को दिया था और सूरदास जी के पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाने पर उन्हें प्राप्त हुआ। अतः यह अनुमान किया जाता है कि सूरदास की समस्त रचना कीर्तनों के रूप में ही रची गई थीं। उनके समस्त पद किसी न किसी राग के अनुसार गाये जाने के लिए रचे गये थे। सूर के गीति पदों में संगीतात्मकता और वाद्ययन्त्रों की संगति में उनकी सुगेयता अतर्क्य है। भारतीय संगीत परम्परा में भावपूर्ण भजनों की जो शास्त्रानुमोदि लोकप्रिय संगीत शैली विकसित हो गई उसका सबसे अधिक श्रेय सूरदास को ही है। सूर के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें काव्य और संगीत का अनुपम समन्वय किया है। सूर के गीति पदों की सम्भवतः सबसे अधिक विलक्षण विशेषता यह है कि उनमें स्वानुभूति-मूलक भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ कृष्ण लीला के अनेक प्रसंगों को क्रम-बद्ध कथा रूप में रचा गया है।

भक्ति काल में भी मीरा ने अपने भावोंको पदों में ही व्यक्त किया है, आधुनिक युग में "प्रसाद" एवं "महादेवी वर्मा" ने भी पदों में पर्याप्त काव्य की रचना की है। प्रसाद जी का एक पद देखिए—

"तुम कनक के अन्तराल में
लुक-छिप कर चलते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते,
योवन के धन, रसकन ढरते ।।
हे लाज भरे सौन्दर्य !
बतादो मौन भरे रहते हो क्यों ?

"तुम्हें बाँध पाती सपनों में" श्रीमती महादेवी की ये पंक्तियाँ तो संगीत अन्यतम उदाहरण हैं।

इस प्रकार आरम्भ से लेकर आज तक पद-साहित्य का विकास होता चला जा रहा है।

अब प्रश्न यह है कि इनमें सूर का क्या स्थान है? अगर सारे पद साहित्य का अध्ययन करें तो पता चलता है कि सूरदास का स्थान सबमें मूर्द्धन्य है। आचार्य बल्लभ से दीक्षित होने के बाद मानों साक्षात् वीणापाणि सरस्वती ही उसकी जिह्वा में आ विराजी थी। उस समय गीतियों की जो अजस्त्र धारा प्रवाहित हुई, उससे सूर का सागर लबालब भर गया। एक या दो अथवा सौ नहीं किन्तु, सहस्त्रावधि पदों का निर्माण हिन्दी साहित्य में तो क्या आज तक विश्व-साहित्य में कोई नहीं कर सका है। सूर के इसी संगीत ने ब्रजभूमि को वन्दनीय एवं ब्रज भाषा को वरेण्य बना दिया है। भाषा व सङ्गीत के कारण सूरदास ने जिस गीति परम्परा को वृद्धिगत करने में सहयोग दिया है, वह अत्यन्त उच्चकोटि का है। वस्तुतः सूर पद-साहित्य में अपना सानी नहीं रखते।

प्रश्न २०—सूर की भाषा पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उत्तर—किसी भी महाकवि के काव्य की एक विशिष्ट शैली होती है। शैली का सौन्दर्य और महत्त्व बहुत कुछ काव्य की भाषा की समृद्धि पर भी आधारित है। सूरदास के काव्य के मूल्याङ्कन में उनकी भाषा का भी एक विशेष महत्त्व है।

सूरदास के काव्य की भाषा ब्रजभाषा है, जो कि हिन्दी का एक विशिष्ट रूप है। यद्यपि सूरदास के पूर्ववर्ती कतिपय कवियों के काव्य में भी ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है, तथापि व्यवस्थित और साहित्यिक भाषा के प्रयोग के कारण सूरदास को ही ब्रजभाषा का आदि कवि माना गया है। वे ब्रजभाषा के बाल्मीकि कहे जाते है। सौरसेनी अपभ्रंश के विकसित रूप में ही ब्रजभाषा का प्रचलन विक्रम की बारहवीं शताब्दी से सूरसेन प्रदेश एवं उसके पार्श्व वर्ती भू-भागों में था। इस बोली में माधुर्य स्वाभाविक रूप से विद्यमान था। अतः तत्कालीन साधु-सन्तों एवं संगीतज्ञों ने इसे अपनाया। ब्रजभाषा के माधुर्य के कारण इसे अन्य ब्रज के इतर—लोगों ने भी ग्रहण

किया। सूर से पूर्व--खुसरो, कबीर, नामदेव आदि की भाषा में ब्रजभाषा का रूप दिखाई देता है, किन्तु उन्होंने उसका साहित्यिक रूप न अपनाया, न तो उस ओर उनका ध्यान ही गया। ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने का श्रेय—जैसे हम आरम्भ में ही कह चुके हैं—सूरदास को ही प्राप्त है। सूर के बाद "वार्ता" की ब्रजभाषा भी व्यवस्थित नहीं। यह सूर का ही कार्य है कि उन्होंने इस भाषा को अपनी प्रतिभा-पारस मणि से छूकर कंचन (साहित्यिक) बना दिया।

कोमल-कान्त पदावली के साथ ही सूर की ब्रजभाषा सानुप्रास, स्वाभाविक प्रवाहमयी, सजीव व भावों के अनुरूप है। (दृष्टकूटों की क्लिष्टार्थमयी भाषा को सूर की भाषा का मापदण्ड नहीं कहा जा सकता)। उनकी भाषा तो आडम्बर-विहीन, व्यावहारिक और अन्तस्तल का चित्रण करने वाली है। एक उदाहरण देखिए—

चलौ किन मानिनि कुंज कुटीर।
तुव बिन कुँवर कोटि बनिता तजि सहत बदन की पीर॥
गद्‌गद् सुर पुलकित विरहानल नैन विलोकत नीर।
क्वासि क्वासि वृषभानु कुमारी बिलपत विपिन अधीर॥
मलयज गरल सुतासन मासत शाखा मृग रिपु वीर।
हिय में हरिष प्रेमअति आतुर-चातुर चलहु पिय तीर॥

× × ×

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहि देखत लरिकन सँग तबहिं खिजत बलि भैया।

सूरदास की भाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ ही संस्कृत के तत्सम् और तद्भव शब्द भी प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। सूर ने तत्सम शब्दों का प्रयोग करके इस भाषा को ब्रज की ही नहीं वरन् समस्त भारत की भाषा बना दिया। प्रायः चार सौ वर्षों तक वह कविजनों की कण्ठ-हार बनी रही। सूर के समस्त साहित्य का विलोकन करने से ज्ञात होता है कि उनके पास शब्दों का विशाल भण्डार था। जिनके कारण वे किसी भी भाव को किसी भी प्रकार से व्यक्त करने में समर्थ थे। उनकी भाषा में संस्कृति के

तत्सम शब्दों का तो प्रयोग हुआ ही है, इसके अतिरिक्त उसमें खड़ी बोली, पूर्वी, पंजाबी, बुन्देली, गुजराती और अरबी, फारसी के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। अरबी, फारसी के शब्दों का उन्होंने स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया है, क्योंकि मुसलमानों के संसर्ग के कारण उनका प्रचलन यहाँ हो गया था, अतः उन्होंने उनका बहिष्कार नहीं किया। इन शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा मिश्रित हो गई पर साथ ही वह बलवती एवं प्रभावशालिनी भी हो गई।

संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग सूर ने प्रचुरता से किया है। देखिए—

सुख पर्यङ्क अङ्क ध्रुव देखियत कुसुम कन्द द्रुम छाये।
मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजन दम्पति लगत सुहाये॥

उक्त पंक्तियों में पर्यङ्क, ध्रुव आदि शब्द संस्कृत के हैं। ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों के प्रयोग अगर न हों, तो वह ब्रजभाषा ही क्या? निम्न कुछ शब्द केवल ब्रज में ही प्रयुक्त होते हैं—

दुर=पुरुषों के कान का भूषण; छाक=कलेऊ; मौंड़ा=लड़का; भौंरा चकडोरी=बच्चों के खिलौने; झारी=लोटा; कनियाँ=गोद; अवसेर=देर।

अन्य भाषाओं के शब्द भी देखिये—

फारसी—खसम, जवाब, बकसौ, जहाज, मुहकम, खर्च।
अवधी—खोइस, सोइस, होइस, इहवाँ, मोर, तोर, जिनि।
पंजाबी—प्यारी।
गुजराती—वियो।
बुन्देलखण्डी—गहिबी, सहिबी।
प्राकृत—सायर।

कहीं-कहीं शब्दों को छन्द की गति के अनुसार नियमित करने के लिये तोड़ा मरोड़ा भी गया है। जैसे नवनीत को नवनी या नौनी, केतु को केत।

सूर की भाषा में प्रवाह भी पाया जाता है। कवि को भावों के लिये शब्द सोचने नहीं पड़ते, वे भावानुकूल स्वतः ही प्रवाहित हो जाते हैं। देखिये—

ब्रज के लोग उठे अकुलाई।
ज्वाला देखि अकास बराबरि दसहु दिशा कहूँ पार न पाई।
अरहरात बनपात गिरत तरु धरणी तरकि तड़ाक सुनाई।
जल बरसत गिरिवर तर बांचे अब कैसे गिरि होतु सहाई।

सजीवता भाषा का आवश्यक गुण है और भाषा में वह सजीवता लोकोक्ति एवं मुहावरों के प्रयोग से आती है। सूरसागर में लोकोक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

(क) कहन लगी अब बढ़ि बढ़ि बात।
(ख) छठि आठें मोहि कान्ह कुँवर सों।
(ग) दाई आगे पेट दुरावति। पाँच की सात लगायी झूँठी।
(घ) बिना भीति तुम चित्र लिखत हो।

निम्न शब्द भी दर्शनीय है, जिनमें सजीवता के साथ ही चित्रमयता भी है—

लटकत मुकुट, मटक भौंहनि की, चटकत चलत, मन्द मुसुकात।

उक्त उद्धरणों एवं सूर काव्य के अध्ययन करने से सूर-काव्य की भाषा की विशेषतायें इस प्रकार लक्षित होती हैं—

(१) सूरदास की कविता के अधिकांश विषय शृङ्गार एवं वात्सल्य के हैं, अतः उनके काव्य में ओज की अपेक्षा प्रसाद एवं माधुर्य गुण अधिक परिणाम में हैं। इन गुणों के कारण कोमलकान्त पदावली का बाहुल्य उनकी पहली विशेषता हैं।

(२) उनकी भाषा की दूसरी विशेषता है भावों के अनुकूल शब्दों का प्रयोग, जिसके कारण वस्तुचित्र भी पाठकों के सामने आ जाता है।

(३) उनकी भाषा की तीसरी विशेषता है सार्थक शब्द योजना।

(४) भाषा का धारावाही प्रवाह उनकी चौथी विशेषता है, जो कि संगीत के ताल के कारण और भी आनन्ददायिनी हो गई है।

(५) उनकी भाषा की पंचम विशेषता यह है कि वह बलवती एवं सजीव है। भावों के अनुरूप विशिष्ट शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा को बल एवं सजीवता प्राप्त हुई है।

इसके साथ ही यह बात भी ध्यान देने के योग्य है कि सूर हमारे सामने तीन रूपों में आए हैं। भक्त, कवि एवं कथा गायक रूपों में। उनकी भाषा इन तीनों रूपों में बदलती हुई आई है। कथागायक के रूप में उनकी भाषा में वह सौन्दर्य व सौष्ठव नहीं जो भक्त एवं कवि के रूप में है। देखिए—

भारत युद्ध जीतल जब भयो।
दुर्योधन अकेल तहँ रह्यो।
अश्वत्थामा तापै जाई।
ऐसी भाँति कह्यो समुझाई।

इस अवतरण में भाषा की दृष्टि से कोई भी काव्यगत विशेषता नहीं। अतः भाषा का यह रूप गौण है। उनकी भाषा का दूसरा रूप वह है जिसमें उनका भक्त हृदय बोलता है, उसी में उनका कवित्व भी प्रस्फुटित हुआ है। सूरदास की इस भाषा का रूप उनके विनय के पदों में देखा जा सकता है, किन्तु इससे भी चमत्कारी रूप देखना हो तो वह उनके बाल-कृष्ण के चरित्र वर्णन में मिलता है। उसमें भी जहाँ प्रेम प्रसङ्ग आता हैं वहाँ तो चमत्कारिता की पराकाष्ठा हो गई है। इस प्रकार की भाषा में काव्य के अङ्गों का प्रयोग इतनी अधिकता से हुआ है कि सूर की प्रतिभा पर मुग्ध हो जाना पड़ता है। यह सूर की ही भाषा का गुण है कि एक लीला पर अनेक पद होते हुए भी उनसे पाठक को अरुचि नहीं होती।

प्रश्न २१—"दैन्य भाव सूरदास के मानस का एक स्थायी भाव है, जो उनकी श्रद्धा, विनय-शीलता, भक्ति भावना की तीव्रता तथा सहज प्रवणशीलता का परिचायक है।" इस कथन की यथार्थता पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—भगवान् को महान और अपने को लघु मानकर भक्त जिस भाव की अभिव्यक्ति करता हैं, उसकी गणना दैन्य भाव में की जाती है। सूरदास ने अपने विनय के पदों में भगवान का माहात्म्य केवल उनकी दयालुता, पतित-पावनता, सर्व समर्थता और भक्त वत्सलता के रूप में चित्रित किया है तथा भक्त की लघुता उसकी अवलम्बन हीनता, पतितावस्था, असमर्थता और हीनता के रूप

में उपस्थित की है। भक्त इनके द्वारा भगवान के निकट पहुँचना चाहता है और भगवान् से अपनी रक्षा की याचना करता है। इस रूप में भगवान् भक्त की योग्यता नहीं देखते। उसकी रक्षा करते हैं। इस प्रकार के कितने ही पद सूरदास ने लिखे हैं। भक्त भगवान् से कहता है—

जो हम भले बुरे तो तेरे।
तुम्हें हमारी लाज बड़ाई विनति सुनहु प्रभु मेरी।
सब तजि तुम सरनागत आयो, दृढ़ करि चरन गहेरी।
तुम प्रताप बल बदत न काहूँ निडर भये घर चेरे॥
और देव सब रङ्क भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे॥
'सूरदास' तुम्हारी कृपा तें पाये सुख जु घनेरे॥

भगवान् से सुरक्षा पा भक्त निर्भय हो गया है। श्याम का 'दास' कहलाने में ही उसे गौरव का अनुभव होता है और उसे क्रीतदास बनकर अपने स्वामी की जूठन खाने में अत्यन्त सुख मिलता है—

हमें नन्द नन्दन मोल लियो।

× × ×

सब कोउ कहत गुलाम स्याम को सुनत सिरात हिये।
सूरदास कौं और बड़ो सुख, जूठन खाय जिये॥

भक्त भगवान् की कृपालुता की प्रशंसा करता थकता नहीं। भगवान् भक्त की रक्षा ऐसे करते हैं, जिस प्रकार गौ अपने बछड़े के पीछे-पीछे उसकी चिन्ता में फिरती है "लग्यौ फिरन सुरभी ज्यों सुतसंग, औयट गुनि गृह बन कौं" भगवान भक्त की योग्यता भी नहीं देखते। भक्त की सबसे बड़ी योग्यता उसकी अयोग्यता ही है। वे भक्त के कुल, मान, जाति-कुजाति एवं मर्यादा का विचार नहीं करते। वे तो केवल प्रीति का आदर करते हैं। वे दुःखी एवं आर्त के सहज सहायक हैं—

स्याम गरीबन हूँ के गाहक।
दीनानाथ हमारे ठाकुर साँचे प्रीत निवाहक॥
कहा विदुर की जाति-पाँति कुल प्रेम प्रीति के लाहक।
कह पण्डव के घर ठकुराई अरजुन के रथवाहक॥

कहा सुदामा के धन हो तौ सत्य प्रीति के चाहक।
सूरदास सठ तातें हरि भजि आरत के दुख-दाहक॥

सूरदास जी ने भगवान् की भक्ति में उनके ऐश्वर्य रूप का चित्रण नहीं किया। उन्हें तो उनका सरल रूप ही रुचिकर लगता है, जिससे वे निरवरोध रूप से अपना सकें, इतना ही नहीं तो भगवान् से हठ भी ठान सकें। वे कहते हैं—

आजु हौं एक-एक करि टरि हौं।
कै तुम ही, कै हम ही माधौ, अपने भरोसे लरिहौं।

\+ + +

कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायो हरि हीरा।
'सूर' पतित तबहीं उठिहै प्रभु, जब हँसि दैहौ बीरा॥

सूरदास ने इस दशा में अपनी पतितावस्था बताकर भगवान् से कहा—हे भगवान्! यदि तुम मेरे जैसे को तारो तो जानें। अजामिल, गज, गनिका आदि का तारना कठिन नहीं था। मैं तो उन सब में शिरोमणि हूँ। "प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ। और पतित सब दिवस चारि के हौं जनमाँतर ही कौ। को करि सकै बराबरि मोरी खैंचि कहत हौं लीकौ।" स्वतः के प्रति भक्त के ये निरादर भाव भगवान् की महत्ता और पतित पावनता के सूचक हैं। यह ठीक है कि भगवान् की आत्मीयता उन्हें कृष्ण के प्रति यशोदा, नन्द, गोप-गोपियों आदि ब्रजवासियों के भावों में मिलती है और इसी कारण उन्होंने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य का अधिक चित्रण किया है, किन्तु दैन्य भाव भी उनका गौण भाव नहीं। सत्य तो यह है कि दैन्य के बिना भक्ति भाव संभव ही नहीं। भाव-मात्र की भक्ति किसी न किसी प्रकार दैन्य युक्त होती है। सूर की मार्मिक वेदना अनेक पदों में प्रकट हुई है—

अबकै राखि लेहु भगवान्।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया, पारधि साधै बान।
ताके डर में भाज्यो चाहत, ऊपर ढुक्यो सचान।
दूहूँ भांति दुख भयो आनि यह कौन उबारै प्रान॥

उक्त दैन्य भाव की अभिव्यक्ति अन्य—वात्सल्य, माधुर्य आदि—भावों के साथ भी हुई है, उसका दिग्दर्शन भी हम करेंगे।

सूर के वात्सल्य में भी दैन्य है। उनका हृदय इतना कोमल और द्रवणशील है कि तनिक से वियोग में वह कातर हो जाता है, यही नहीं वियोग की आशङ्का उन्हें कातर और दयनीय बना देती है। चाहे यशोदा हो या नन्द, गोप सखा हों या साधारण ब्रजवासी, गोपियाँ हों या राधा यह करुण-धारा सब के हृदय में प्रवाहित होती है। कृष्ण जब तक गोकुल में रहते हैं, तब तक तो यशोदा प्रसन्न-वेदना रहती हैं, किन्तु ज्योंही अक्रूर श्री कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए आते हैं और यशोदा देखती है कि कृष्ण समस्त मोह तोड़ मथुरा को चल पड़े हैं तो यशोदा अत्यन्त दीन होकर पुकार उठती है—

मोहन नेंकु वदन-तन हेरो।
राखो मोहि नात जननी को, मदन गुपाल लाल मुख फेरो।
पीछे चढ़ौ विमान मनोहर, बहुरौ ब्रज में होत अँधेरो।
बिछुरन भेंट देहु ठाड़े ह्वै, निरखौ घोष जनम को खेरो।
समदौ सखा स्याम यह कहि कहि अपने गाई ग्वाल सब घेरो।
गये न प्रान सूर तिहि औसर, नन्द जतन करि रहे घनेरो।

कृष्ण को मथुरा छोड़ जब बाबा नन्द लौटने लगे तो उनका हृदय ग्लानि से भर जाता है। यहाँ उन्हें अपनी हीनता और कृष्ण की प्रभुता में स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है। वे करुण स्वर में कहते हैं—

तुम मेरी प्रभुता बहुत करी।
परम गंवार ग्वाल पसु पालक, नीच दसा लै उच्चधरी।

इसी प्रकार दीनता में नन्द जब अकेले ही गोकुल लौट आते हैं तो यशोदा ने पूछा—मेरा कृष्ण कहाँ है? उसके बिना तुम अकेले कैसे चले आये। "फूट न गईं तिहारी चारों कैसे मारग सूझे।" तुमने दशरथ की ही भांति वहीं प्राण क्यों न त्याग दिये? क्या तुम कृष्ण को छोड़ दूध दही चखने आये हो? इस प्रकार यशोदा नन्द को धिक्कारने लगी। नन्द भी यह सुनकर व्याकुल हो गये और मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। सचेत न होने पर कभी

नन्द यसोदा से कहते हैं —"तब तू मारबोई करति । रिसिनि आगे फिर जो आवत अब लै भांड़े भरत" तो कभी यशोदा नन्द से कहती—

"सूर नन्द फिरि जावहु मधुपुरी ल्यावहु सुत करि कोटि जतन।"

उक्त बातो में नन्द या यशोदा की दारुण दीनता प्रकट होती है।

इसके अनन्तर यशोदा कृष्ण से मिलने का उपाय सोचती है । कभी पथिकों द्वारा कृष्ण के लिए सन्देश भेजती है—"कहियो पथिक जाई घर आवहु राम कृष्ण दोउ भैया, सूर श्याम कत होत दुखारी जिनके मौसी मैया" इतना ही नहीं वह वसुदेव की दासी तक बनना चाहती है । विरह जन्य वात्सल्य के अन्दर यशोदा का हृदय यह सोचकर पश्चाताप करता है कि कृष्ण को बालहठ करने के कारण मैंने जो कष्ट दिये थे, स्यात् उन्हीं के कारण वे लौटकर नहीं आये । कभी वह पथिकों के पैर पकड़ कर भी विनती करती हैं । कृष्ण के बिना सब उन्हें निरर्थक जान पड़ता है—"सूरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न लहै ।" कभी-कभी तो यशोदा का आत्मविश्वास भंग होने लगता है, फिर भी वह जानती है कि—

खान पान परिधान राज सुख जो कोटि लड़ावै ।
तदपि सूर मेरो बाल कन्हैया माखन ही सचु पावै ॥

उसे अब भी यह विश्वास है कि कृष्ण प्रेम के भूखे हैं, धन वैभव के नहीं । उसका यह विश्वास भक्त के इस विश्वास से भिन्न नहीं कि उसके भगवान् को भक्त ही सर्वाधिक प्रिय होता है । जब उद्धव ब्रज में आते हैं तो यशोदा उनसे भी अपने हृदय की दीनता प्रकट करती है—

ऊधो हम ऐसी नहिं जानी ।
सुत के हेतु मरम नहिं पायो प्रकटे सारंग पानी ॥

जब उद्धव मथुरा जाने लगते हैं तो यशोदा मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं, किन्तु प्रेम के कारण उनके प्राण नहीं छूटते । वात्सल्य का यह दैन्य ही उसे सामान्य मानवीय धरातल की सचाई के साथ ऊपर उठाकर अलौकिक बना देता है । कबीर के शब्दो में—

विरहबान जेहि लागिया औषध लगत न ताहि ।
सुसुकि भरि भरि जिये उठे कराहि कराहि ॥

भक्त भी भगवान् के वियोग में मूर्छित होता है किन्तु प्रेम की फाँसी ऐसी होती है कि तड़पते हुए भी प्राण नहीं निकलते।

गोप मित्रों का प्रेम भी वियोग दशा में अत्यन्त करुण हो जाता है और वे ही सखा जो कृष्ण के साथ अत्यन्त ढिठाई का व्यवहार करते थे, अत्यन्त दीन बन जाते हैं। कृष्ण-वियोग की स्वल्पमात्र आशंका भी उन्हें कातर बना देती हैं जब कृष्ण के दैवी रूप के संकेत उन्हें भावी वियोग का आभास देने लगते हैं, तब वे सखा भाव भूलकर कृष्ण से प्रार्थना करने लगते हैं—

ग्वाल सखा कर जोरि कहत हैं, हमहि स्याम तुम जनि बिसरावहु।
जहाँ जहाँ तुम देह धरत हौ, तहाँ तहाँ जनि चरण छुड़ावहु॥

माता यशोदा की वात्सल्य पोषित दीनता और गोपों की सख्य पोषित दीनता का वर्णन ऊपर हुआ है, गोपियों और राधा की दीनता माधुर्य या प्रेम के अन्तर्गत है। कभी समय था जब गोपियाँ कृष्ण के साथ क्रीड़ा करती हुई उत्फुल्ल रहती थीं, कृष्ण के मथुरा जाते ही उनकी यह प्रसन्नता दीनता में परिवर्तित हो गई। गोपियों की करुण दशा के चित्रण में कवि ने भक्त हृदय का दैन्य सबसे अधिक मार्मिकता के साथ प्रदर्शित किया है। अक्रूर जब कृष्ण को रथ पर चढ़ाकर मथुरा ले गये, उस समय तो सभी देखती रह गईं। बाद में वे पश्चात्ताप करने लगीं—

हरि बिछुरत फाट्यौ न हियौ।
भयो कठोर ब्रज तें भारी, रहि के पापी कहा कियौ।
घोरि हलाहल सुन री सजनी, तिहिं अवसर काहे न पियौ॥

कृष्ण के बिना उन्हें जीवन व्यर्थ लगने लगा। वे अनाथ हो गईं किन्तु उन्हें आशा है कि स्यात् कृष्ण उनकी विनती सुन लें उनके हृदय में कातर हृदय की गम्भीर करुणा है—

नाथ अनाथन की सुधि लीजै
गोपी, ग्वाल, गाइ, गो-सुत सब दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै।
चरन कमल दरसन नव नौका करुना सिन्धु जगत जस लीजै।
'सूरदास' प्रभु आस मिलन की एक बार आवन ब्रज कीजै॥

गोपियों का हृदय-विषाद अधिकतर उद्धव के साथ परिहासपूर्ण व्यंग्यों में ध्वनित हुआ है। गोपियों की दशा बहुत ही करुणापूर्ण है। वे उद्धव को क्या सुनायें ? गौओं की दशा से ही उनकी दशा का भी अनुमान किया जा सकता है—

ऊधौ, इतनी कहियो जाइ।
अति कृस गात भई ये तुम बिन परम दुखारी गाइ॥
जल समूह बरसति दोउ अँखियाँ, हूँकति लीन्हे जाउँ।
जहाँ-जहाँ गोदोहन कीन्हों सूँघति सोई ठाउँ॥
परति पछार खाइ छिन ही छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहु 'सूर' काढ़ि डारि हैं, बारि मध्य ते मीन॥

जब गौओं की ही यह दशा है तो गोपियों की—जो मानवी हैं—क्या दशा होगी ? गोपियों में भी सबसे दीन-मलीन अवस्था राधा की है—

अति मलीन वृषभानु कुमारी।
हरि स्रम जल भीज्यो उर अंचल, तिहि लालच न धुवावत सारी॥
अध मुख रहत अनत नहिं चितवति जोगथ हरि थकित जुवारी।
छूटे चिकुर वदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि संदेश सुनि सहज मृतक भइ, इक विरहिनि दूजे अलिजारी।
'सूरदास' कैसे करि जीवैं, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी॥

राधा ही नहीं अन्यान्य गोपियाँ भी अत्यन्त कातर हैं। उनके होठ सूख गये हैं, मुँह से बात नहीं निकलती, उलटी साँसें चलती हैं, चेहरे मुरझा गये हैं—

परम वियोगिनी सब ठाढ़ी।
ज्यों जल हीन दीन कुमुदनि, बन रवि प्रकाश की डाढ़ी।
जिहिं बिधि मीन सलिल ते बिछुरैं तिहि अतिगति अकुलानी
सूखे अधरन कहि आवै कछु, वचन रहित मुख बानी।
उन्नत स्वास बिरह विरहातुर कमल बदन कुम्हिलानी॥

गोपियों की करुण दशा के वर्णन में भी वही मनोवृत्ति दिखाई देती है जो कवि ने विनय के पदों में हरि की करुणा याचना प्रकट करने में की थी।

तब उन्हें विश्वास नहीं था कि हरि मुझे अपना लेंगे, अब हो गया है। इसी कारण उनके दैन्य में निराशा नहीं। वस्तुतः यह दैन्य उनके प्रेम की ज्योति हैं, जिसको आरम्भ में उन्होंने आदर्श रूप में ग्रहण किया था। प्रेम की प्राप्ति हो जाने पर वियोग का दुःख भी सुख ही देता है। यह देखने योग्य है कि दैन्यभाव सूर के मन का स्थायी भाव है जो उनकी श्रद्धा, विनयशीलता, भक्ति भावना की तीव्रता तथा सहज द्रवणशीलता का परिचायक है। भक्त के लिए यह भाव परम आवश्यक है। दैन्य के बिना भक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती।

प्रश्न २२ —"कृष्णलीला का सम्पूर्ण वातावरण सौन्दर्य और माधुर्य से ओत-प्रोत है।' आप इस उक्ति से कहाँ तक सहमत हैं ? तर्क-पूर्ण उत्तर दीजिये।

उत्तर—काव्य और कला के समीक्षकों ने काव्य के मूल में किसी न किसी रूप में सौन्दर्य का अस्तित्व स्वीकार किया है। मनुष्य का यह निसर्ग भाव है कि वह सुन्दर के प्रति आकृष्ट होता है, किन्तु किसको कौन-सी वस्तु अधिक सुन्दर लगती है, यह मानव की रुचि पर निर्भर है। उसका कोई मानदण्ड निर्धारित नहीं किया जा सकता किन्तु रुचि वैचित्र्य होने पर एक बात तो निश्चित है कि उस अनुभूति का परिणाम है आनन्द। इसका स्वाभाविक सा अर्थ यह हुआ कि सुन्दर वस्तु हमें आनन्द देती है और जो वस्तु आनन्द देती है वही सुन्दर है इसके साथ ही यह भी जान लेना आवश्यक है कि सौन्दर्य की अनुभूति भावात्मक अथवा मानसिक होती है। सौन्दर्य आनन्द का ही प्रतिरूप है। सौन्दर्य की यह अनुभूति और कल्पनाशक्ति जब अत्यधिक तीव्र हो जाती है, तभी संगीत, चित्र, काव्यादि कलाओं की उत्पत्ति होती है।

सूरदास की रचना में आनन्द का उद्रेक है। यद्यपि उनका उद्देश्य काव्य रचना नहीं, भक्ति की अभिव्यक्ति था, तो भी यह एक विलक्षण संयोग की बात हुई कि उनकी रचना में सौन्दर्य और भक्ति दोनों का अपूर्व समन्वय हुआ। उन्होंने श्रीकृष्ण को रसेश्वर और रूप की राशि मानकर ग्रहण किया है। श्रीकृष्ण का वस्तुतः कोई रूप न होते हुए भी वे भक्त के भावानुसार

साकार सौन्दर्य के प्रतीक हैं। उनका रूप सुन्दर है, किन्तु वह गतिशील है। सूर ने उनकी प्रत्येक चेष्टा व क्रिया को ललित और मनोहर चित्रित किया है। सूरदास ने कृष्ण का सौन्दर्य केवल सौन्दर्य (आनन्द) के लिये चित्रित किया है। रसेश्वर कृष्ण के लीला सौन्दर्य से प्रेरित होकर उन्होंने अपने पदों की रचना की है। इसीलिए निसर्गतः उनकी पद रचना में सौन्दर्य का समावेश हो गया है।

सूर के सौन्दर्य चित्रण को हम मानव-रूप-सौन्दर्य-चित्रण, प्राकृतिक सौन्दर्य-चित्रण और लीला-सौन्दर्य-चित्रण इन तीनों रूपों में विभक्त कर सकते हैं।

मानव रूप-सौन्दर्य चित्रण—इसमें सूरदास ने श्रीकृष्ण के शैशव से लेकर किशोर अवस्था तक के अनेक रूप चित्रित किए हैं। जिनमें कवि की भावना, कल्पना, कुशलता और शैली की चमत्कारिता एक साथ व्यक्त हुई है। श्याम—घुटुनुओं से चलते हुए नन्द के आँगन में खेलते हैं। वे तोतली बोली बोलते हैं। धूल-धूसरित उनका शरीर सबको प्रसन्न करता है; यह चित्रण ही वात्सल्य भाव को उद्दीप्त करने को पर्याप्त था, किन्तु सूर ने अनेक सौन्दर्य के उपकरणों से सजाकर इसे और अधिक प्रभावशाली बना दिया है। देखिए—

कहाँ लौं वरनौं सुन्दरताई।
खेलत कुँवर कनक आँगन में नैन निरखि छवि पाई।
कुलही लसति सिर स्याम सुन्दर के बहुविधि सुरँग बनाई।
मानो नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई।
अति सुदेश मृदु-हरत चिकुर मन मोहन मुख बगराई।
मानो प्रकट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई।
नील, सेत अरु पीत, लाल मनि लटकन भाल लुनाई।
सनि गुरु-असुर देव-गुरु मिलि मनु भौम सहित सुमुदाई।
दूध दन्त-दुति कहि न जाति कछु अदभुत उपमा पाई।
किलकत-हँसत दुरति, प्रकटति मनु घन में बिज्जु छटाई।
खण्डित वचन देत पूरन सुख अलप-अलप जल पाई।

घुटुरिन चलत रेनु-तन मण्डित, 'सूरदास' बलि जाई।

इस प्रकार अनेक पदों में सूर ने कृष्ण के बाल-सौन्दर्य का चित्रण किया है। शिशु के हँसने, लड़खड़ाकर चलने, तुतलाकर बोलने, चन्द्रमा के लिए हठ करने, माखन चुराने, अपराध पर माता से पिटने आदि के कितने ही मनोहर और आकर्षक चित्र सूर ने खींचे हैं। माखन चोरी के अपराध में माँ ने श्रीकृष्ण को ऊखल से बाँध दिया, उस समय का उनके बिलखने का चित्र देखिये—

देखि री देखि हरि बिलखात।
अजिर लोटत राखि जसुमति धूलि धूसर गात।
मूँद मुख छिन सुसुकि रोवत, छिनक मौन रहात।
कमल मधि अलि उड़त सकुचत पच्छ दल आघात।
चपल दृग पल भरे असुवा अछुक ढरि-ढरि जात।
अलप जल सीप द्वै लखि मौन मनु अकुलात।
लकुट कै डर ताकि तोहि तब पीत पट लहरात।
'सूर' प्रभु पर वारिये ज्यों भलेहि माखन खात॥

कृष्ण की छवि का अधिक प्रभाव तो कान्ता रति से प्रेरित ब्रज-गोपियों पर पड़ता है। एक बधू अपने अनुभव सुना रही है—

आज गई हौं नन्द भौन में कहा कहौं गृह चैन री।
चहुँ ओर चतुरंग लच्छमी कोटिक दुहियत धैन री।
घूमि रहीं जित-तित दधि-मथनी सुनत मेघधुनि लाजैरी।
बरनौं कहा सदन की शोभा बैकुण्ठहु तें राजै री।
बोलि लई नव बधू जानि तहँ खेलत कुंवर कन्हाई री।
मुख देखत मोहिनीं सी लागै रूप न बरन्यौ जाई री॥

सूरदास ने कृष्ण के रूप सौन्दर्य का अनेक प्रकार से वर्णन किया, किन्तु वह तो रूप-सागर हैं; भला उनकी थाह कौन पा सकता है? अतः सूरदास ने कहा—

जो मेरी अँखियन रसना होतीं कहती रूप बनाई री।
चिरजीवहु जसुदा के ढोठा सूरदास बलि जाई री॥

सूरदास ने कृष्ण के श्याम रंग का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। पुरुष के श्याम रंग में गौरवर्ण की अपेक्षा अधिक आकर्षण होता है। श्रीकृष्ण के इसी श्याम वर्ण का और अंग प्रत्यङ्ग का अत्यन्त सुन्दर वर्णन सूरदास ने किया है। उनके नख अत्यन्त चमकीले हैं, उनके चरणों का रंग कुछ अरुणाभ है, उनके जानु-जंघारी सुन्दर हैं। कमर उनकी कृश है, नाभि भी अत्यन्त आकर्षण युक्त है। उनकी घुंघराली अलकें, धनुषाकार भृकुटि, चन्द्र-मुख, मोर मुकुट पीताम्बर, किंकरणी, तिलक आदि का जितना मनोहर और ललित चित्र सूरदास ने खींचा है, उतना कोई अन्य कवि न खींच सका। कृष्ण से सम्बद्ध लकुटी, कामरिया, मुरली आदि का भी सूर ने चित्रण किया है इतना करने पर सूर कहते हैं कि कृष्ण के रूप सौन्दर्य-सागर का अवगाहन-चित्रण कठिन है।

देखो माई सुन्दरता को सागर।
बुधि, विवेक, बल चारन पावत मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अम्बुनिधि कटि पट पीत तरङ्ग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत, भँवर पर अँग-अँग।
मीन नैन मकराकृत कुन्डल, भुज सरि सुभग भुजंग।
कनक खचित मनिमय आभूषन मुख स्रमकन सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रकट कियौ ससि श्रीअरु सुधा समेत।
देखि सरूप सकल गोपी जन, रहहिं विचारि विचारि।
तदपि सूर तरि सकीं न शोभा रहीं प्रेम पचि हारि॥

सूरदास अपनी कल्पना के सम्मुख शोभा का जो सागर लहराते हुए देखते हैं, वे उसे एक सांगरूपक से कहना चाहते हैं, किन्तु फिर भी सौंदर्य का वह सागर उनकी कल्पना में नहीं आता। श्रीकृष्ण की शोभा भी एक सी नहीं रहती। प्रतिक्षण उनका सौंदर्य नवीन आकर्षण उपस्थित करता है—

सखी री सुन्दरता को रङ्ग।
छिन छिन मांहि परत छबि औरे, कमल नैन के अङ्ग॥

+ + +

श्याम सुभग के ऊपर बारौं आली कोटि अनङ्ग ।
सूरदास कछु कहत न आवै, भई गिरा-गति पंग ।।

क्यों न हो ? "क्षणे क्षणे यन्नवता मुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" क्षण-क्षण में जिसमें नवीनता आवे वही तो वास्तव में सुन्दरता है ।

वस्तुतः सौन्दर्य मन और वाणी से परे की वस्तु है । आँखें भी उसे देख नहीं पातीं, क्योंकि वह इतना विचित्र है कि वे उसमें ठहरती नहीं किन्तु वही मूर्ति राधा और गोपियों के शरीर में ऐसी समा गई है कि वहाँ से निकलने का नाम नहीं लेती । कृष्ण के सौंदर्य को तो केवल राधा ही जान सकी । अतः राधा को भी सूर ने अपूर्व सुन्दरी चित्रित किया है । सूरदास ने सूरसागर में इस प्रकार अनेक मान रूप-सौंदर्य अङ्कित किये हैं ।

प्राकृतिक-सौन्दर्य-चित्रण—मानव की भाँति प्रकृति भी अपूर्ण सौन्दर्य से परिपूर्ण है । सूरदास ने प्रकृति को भी कृष्णमय देखा है । उसकी शोभा को सूर जिस पैनी नजर से देख सके, अन्य नहीं । उन्हें प्रभात इसलिये प्रिय है कि उस समय श्रीकृष्ण जागते हैं । प्रभात में विकसित होते हुए कमल कृष्ण की अधखुली आँखों की याद दिलाते हैं, कलरव करते पक्षी कृष्ण का यशोदा गान करते जान पड़ते हैं, कमलों पर गुंजारते भौंरे कृष्ण के प्रेम में उनका गुण गान करते जान पड़ते हैं । जैसे सूर्योदय से अन्धकार दूर हो जाता है. उसी प्रकार श्रीकृष्ण के जागने पर दुःख, दैन्य ताप आदि भी नष्ट हो जाते हैं एवं आनन्द छा जाता है ।

सूर ने बसन्त ऋतु के अनेक चित्र अङ्कित किये हैं । क्योंकि उस काल में कृष्ण यमुना तट पर गोपियों के साथ रास लीला करते हैं । उसका एक चित्र देखिये—

कोकिल बोलीं बन बनफूले, मधुप गुंजारन लागे ।
सुनि भयो शोर रोर वंदिन को, मदन महीपति जागे ।।
ते दूने अंकुर द्रुम पल्लव, जे पहले दव दागे ।
मानहुँ रति पति रीझ जाबकनि, बरन बरन दये बागे ।।
नई प्रीति, लता, पुहुप नये, नयन नये रस पागे ।
नये नेह नव नागरि हरषित, सूर सुरंग अनुरागे ।।

इसमें कवि ने वाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौंदर्य की अधिक अभिव्यक्ति की है।

सभी ऋतुओं में अपना अपना आकर्षण होता है। वसन्त के बाद वर्षा और शरद की शोभा भी विशेष सुहावनी होती है। सूर ने वर्षा ऋतु में हिंडोले का वर्णन कर रसेश्वर श्रीकृष्ण का उल्लास चित्रित किया है। 'दादुर शोर कर रहे हैं, काली घटा छायी है, आकाश में बक पंक्ति विचरण कर रही है, पपीहा, मोर आदि बोल रहे हैं। नन्हीं-नन्हीं बूंदें झर रही हैं, नदियाँ बह रही हैं।' ऐसे अवसर पर श्याम गोपियों के संग—

> झूलत, झुलावत कण्ठ लावत, बढ़ी आनन्द वेलि।
> कबहुँक रहसत, मचकि लै लै एक-एक सहेलि।
> झकझोरि झमकति डरति प्यारी, पिया अंकन मेलि।
> तिहि समय सकुचि मनोज तकि छवि जक्यो बनु सर डारि॥

संयोग में जो प्रकृति सुख देती है, वियोग में वही दुःख देने वाली होती है। वर्षा ऋतु की शोभा भी गोपियों के वियोग को और अधिक उद्दीप्त करती है। बादल उन्हें श्याम की याद दिलाते हैं। दामिनी दाँतों की चमक बन दुःख देती है। इन्द्रधनुष में उन्हें पीताम्बर का भ्रम होता है। बादलों में कृष्ण का रूप देख वे व्याकुल हो जाती हैं—

> इन्द्रधनुष मनु पीत वसन छवि, दामिनि दसन बिचारि।
> जनु बग पाँति भाल मीतिनि के, चितवन चित्त निहारि।
> गरजत गगन गिरा गोबिन्द मनु, सुनत नयन भवे वारि।
> 'सूरदास' गुन सुमरि स्याम के बिकल भईं ब्रज नारि।

वर्षा के विभिन्न उपकरणों में गोपियों को मोर अधिक दुखी करता है। बिजली चमक रही है, बादल बरस रहे हैं और ऊपर से मोर बोल-बोल कर हृदय को जलाते हैं। वे कहती हैं—

> कोऊ माई बरजे री इन मोरनि।
> टेरत विरह रह्यो न परे छिन, सुनि दुख होत करोरनि।

दिन में मोर और रात में पपीहा भी गोपियों को चैन नहीं लेने देता—

बहुरि पपीहा बोल्यो माई ।
नींद गई चिन्ता चित बाढ़ी सुरति स्याम की आई ।

पपीहे के बोल से जितनी वे दुखित होती हैं, उतनी ही उन्हें शान्ति भी मिलती है, क्योंकि वह उन्हीं सा वियोगी है । वह भी इन सा ही पी-पी रटता है—

सखी री चातक मोहि जियावत ।
जैसेहि रैन रटति हौं पिय पिय तैसेहि वह पुनि गावत ।

इस प्रकार सूर ने कृष्ण के रूप, उनकी क्रीड़ाओं आदि को चित्रित करने के लिये प्रकृति के विस्तृत प्राँगण में से अनेक पदार्थों को खोज निकाला है । इस प्रयोग में कवि की अन्तर्दृष्टि ही अधिक दिखाई देती है । कहीं-कहीं भाव के उद्दीपन में भी प्रकृति वर्णन है—

पट कत बाँस कांस कुस चटकत लटकत ताल तमाल ।
उचटत अति अंगार, फुटत फट झटपट लपट कराल ॥

बन में अग्नि-दाह का यह चित्र गोपों के मन के भय के लिये किया गया है । इसी प्रकार गोवर्द्धन धारण लीला में 'भय' के उद्दीपन के लिये जलवर्षण का चित्रोपम वर्णन है । साथ ही यह भी मानना होगा कि सूर के प्रकृति-चित्रण में कहीं-कहीं खिलवाड़ भी हो गई है । उनकी यह स्थिति भावातिरेक के कारण हुई ।

लीला-सौंदर्य-चित्रण—श्रीकृष्ण के क्रिया-कलाप का जो भी वर्णन सूरदास जी ने किया है, वह केवल मनो-मोहकता और सौंदर्याङ्कन की दृष्टि से ही किया है । वह क्रिया-कलाप लीला नाम से अभिहित किया गया है । लीला का प्रयोजन भी केवल लीला है और कुछ नहीं । इसका भावार्थ यह हुआ कि इन लीलाओं का उद्देश्य सौन्दर्य भाव जागृत करना है । श्रीकृष्ण के संहार या आह्लाद कार्य सभी लीला हैं । शैशव में अंगूठा चूसने में ही वे समस्त ब्रह्माण्ड को कँपा देते हैं—

उछरत सिंधु धराधर काँपत, कमठ पीठि अकुलाई ।
सेस सहस फन डोलन लागत हरि पीवत जब पाई ॥

बढ्यो वृन्दावट, सुर अकुलाने गगन भयो उत्पात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आघात॥

कालिय-दमन के प्रसङ्ग में भी सूरदास ने कृष्ण के लीला सौन्दर्य का मार्मिक उद्घाटन किया है—

पूँछि राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि,
देख सब साँपि अवसान भूले।
करत फन घात, विष जात उतरात अति,
नीर जरि जात नहिं गात् परसै॥
'सूर' के स्याम; प्रभु लोक अभिराम,
बिनु जान अहि राज विष ज्वाल बरसै॥

इस लीला में भी वे लोक अभिराम हैं। उन्हें आनन्द ही है। धेनुक बध, गोवर्धन धारण, दावानल-पान आदि कार्यों में भी उनकी यही दशा है। वे ऐसे क्षणों में कभी विषाद या क्रोध में नहीं आते। वे सर्वदा हँसते, खेलते और आनन्द मनाते ही देखे जाते हैं। कंस की नगरी में भी उनके सभी कार्य ललित और विनोद-पूर्ण हैं—

हँसत हँसत स्याम प्रवल कुबलया संहाइयौ।
तुरत दंत लिये उपारि, कंध निपट चले धारि—
निरखत नर नारि मुदित चक्रित गज मारयौ।
अति ही कोमल अजान, सुनत नृपति जिय सकान—
तउ बिन जनु भयो प्रान मल्लिन पै आये।
हँसि बोले स्याम राम, कहा सुनत रहे नाम,
खेलन को हमहि काम बालन संग डोलैं।

इसी प्रकार कंस का संहार भी उनके लिए विनोद और कौतुक ही है। उनके कंस-निकन्दन और गोपी-मोहन रूप में कोई अन्तर नहीं। वही श्याम कोमल शरीर, वही नटवर वेश और मृदुल शृंगार है—

नवल नन्द नन्दन रंग भूमि राजैं।
श्याम तन, पीत पट मनो घन में तड़ित मोर के पंख माथे विराजैं॥

स्रवन कुंडल झलकमानो चपला चमक दृग अरुण कमल दल से विसाला।
भौंह सुन्दर धनुष, वान सम सिर तिलक, केश कुंचित सोह भ्रंग माला ॥
हृदय-बन माल, नूपुर चरन लाल, चलत गज चाल, अति बुधि विराजै ॥

इस प्रकार सूरदास के काव्य में कृष्ण-लीला का सम्पूर्ण वातावरण सौंदर्य और माधुर्य से ओत प्रोत है। जो कि भक्ति भावना युक्त है।

प्रश्न २३—"भक्त कवि होने के कारण सूरदास ने नायिका भेद का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत नहीं किया, किन्तु उनके शृंगारिक कथन में नायिका भेद का स्वाभाविक विकास है" इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए।

उत्तर—काव्य-शास्त्र के अनुसार शृङ्गार रस के आलम्बन विभाग के [अन्तर्गत नायिका भेद का स्थान है। इस कारण वह इस प्रकार का ही एक अवयव है, किन्तु रीतिकालीन कवियों ने उसका ऐसा विशद और सांगोपांग वर्णन किया है कि वह एक स्वतन्त्र विषय बन गया है।

सूरदास ने राधाकृष्ण की शृङ्गारिक लीलाओं का ऐसा विशद वर्णन किया है कि उसमें नायिका भेद का स्वाभाविक विकास हो गया है। राधा कृष्ण के पारस्परिक प्रेम के क्रमिक विकास, उनकी संयोग एवं वियोग की अनेक चेष्टाओं तथा उनके मान, उपालम्भ, मिलन आदि की अनेक उक्तियों में लक्षण कथन न होने पर नायिका के अनेक भेदोपभेद आ गये हैं।

पुष्टि सम्प्रदाय में स्वकीया भक्ति का महत्त्व है, अतः स्वकीया के अनुकूल अज्ञात यौवन से लेकर मध्या, प्रौढ़ा आदि सभी नायिकायों का कथन हो गया है। वल्लभ सम्प्रदाय में परकीया भक्ति अग्राह्य है, अतः "सागर" में परकीया नायिका के कथन कम ही मिलते हैं। पुष्टि सम्प्रदाय की भक्ति के अनुसार राधा स्वकीया और चन्द्रावली परकीया नायिका हैं। अधिकांश गोपियों ने भी स्वकीया भाव से कृष्ण से अनुराग किया था। अतः उनमें भी तत्त्व का प्राधान्य है, किंतु कहीं-कहीं उनमें परकीया तत्त्व की भी अभिव्यक्ति हो जाती है। इनके अतिरिक्त सूरदास जी के काव्य में गर्विता, मानवती, प्रोषित पतिका, अभिसारिका, खण्डिता आदि नायिकाओं के विशद वर्णन

मिलते हैं। नीचे हम कुछ ऐसे पद उपस्थित करेंगे जिनमें नायिकाओं के विभिन्न भेदों का कथन हुआ है।

श्रीकृष्ण ने दानलीला प्रसङ्ग में ब्रज-बालाओं के विकसित अङ्गों का ध्यान उनके (अङ्गों) के उपनामों द्वारा दिलाया है, किन्तु उन्हें इनका कुछ भी ज्ञान नहीं। निम्न पद में इसी 'अज्ञात यौवना' का कथन हुआ है—

यह सुनि चकृत भई ब्रज-बाला।
तरुनी सब आपुस में बूझति कहा कहत नन्दलाला।
कहाँ तुरग, कहाँ गज केहरि, कहाँ हंस सरोवर सुनिये।
कंचन कलस गढ़ाये कब हम, देखे धौ यह गुनिये॥
कोकिल, कीर, कपोत बनन में, मृग, खंजन, सुक संग।
तिन को दान लेत है हमसों, देखहु इनके रंग॥
कन्दन, चौर सुगन्ध बतावत, कहाँ हमारे पास।
'सूरदास' जो ऐसे दानी देखि लेहु चहुँ पास॥

अपनी भुजा श्याम के भुज पर और श्याम की भुजा अपनी छाती पर रख क्रीड़ामग्न "आनन्द सम्मोहिता" नायिका का यह चित्र देखिए—

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया।
क्रीड़ा करत तमाल तरुन तर, स्याम-स्याम उमँग रस भरिया।
यों लपटाय रहे उर-उर ज्यों, मरकत मनि कंचन में जरिया।
उपमा काहि देउँ को लाइक, मनमथ कोटि बारनै करिया।
'सूरदास' बलि-बलि गोरी पर, नन्द कुँवर वृषभानु कुँवरिया॥

अधीरा नायिका का चित्रण निम्न पद में देखिए—

मोहि छुवौ जिनि दूर रहौ जू।
जाकों हृदय लगाइ लई है, ताकी बाँह गहौ जू॥
तुम सर्वज्ञ और सब मूरख, सो रानी औ दासी।
मैं देखति हिरदै वह बैठी, हम तुम को भइ हाँसी॥
बाँह गहत कछु सरम न आवत, सुख पावत मन माहीं।
सुनहु 'सूर' मो तन को इक टक चितवति डरपति नाहीं॥

नायिका भेद के आचार्यों ने परकीया के अन्तर्गत 'वचन विदग्धा' और 'क्रिया विदग्धा' का कथन किया है। सूरदास ने भी गोपियों व राधा की चेष्टाओं में अनेक स्थानों पर बचन व क्रिया की विदग्धता दिखाई है। यह बात अलग है कि इन पदों में परकीयत्व का भाव न हो, किन्तु विदग्धता अवश्य है। निम्न-लिखित पद में 'वचन विदग्धता' का चित्रण हुआ है—

तब राधा इक भाव बतावति।
मुख मुसकाई सकुचि पुनि लीन्हों, सहज चलीं अलकें निरवारति।
एक सखी आवत जल लीन्हें, तासों कहति सुनावति।
टेरे कह्यो घर मेरेजै हो मैं जमुना ते आवति।
तब सुख पाई चले हरि घर कों हरि प्यारीहिं मनावत।
'सूरज' प्रभु वितपन्न कोक-गुन ताते हरि-हरि ध्यावत॥

राधा की चतुरता उक्त पद में कितनी सुन्दर व्यक्त हुई है, सखी को सुना-कर कृष्ण को बचन-संकेत दे रही है कि तुम घर मुझे मिलो। मैं अभी यमुना से आती हूँ।

निम्न पद में "क्रिया विदग्धा" का चित्रण है। नायिका गुरुजनों के साथ बैठी है, कृष्ण आ गए। अब उन्हें कैसे मिलन संकेत दे? एक बात मस्तिष्क में आई झट से हाथ से बिन्दी छूकर चन्द्रोदय के समय का निर्देश कर दिया—

स्याम अचानक आय गयो री।
मैं बैठी गुरुजन बिच सजनी, देखत ही मेरे नैन नये री॥
तब इक बुद्धि करी मैं ऐसी बेंदी सों कर परस किये री।
आप हँसे उत पाग मसकि हरि, अन्तरयामी जान लिये री॥

दशानुसार नायिका भेदों में 'मानवती' का प्रमुख स्थान है। नायक के दोषों का अनुमान कर नायका का कोप-पूर्वक मान करना और नायक द्वारा उसे मनाना श्रृङ्गार प्रकरण का महत्वपूर्ण अंश है। निम्न पद ऐसे ही पदों में से एक है। राधा मान किए बैठी है। कृष्ण उसे मनाते हुए कह रहे हैं, तू रुष्ट क्यों है, मेरी तू ही कान, नाक और प्राण आधार है, तू जिसे मेरे हृदय में बताती है उसे बाँह पकड़ कर बता तो सही—

कहा भई धन बावरी, कहि तुमहिं सुनाऊँ।
तुमतें को है भावती, सो हृदय बसाऊँ॥
तुमहिं स्रवन, तुम नैन ही, तुम प्रान अधारा।
वृथा क्रोध तिय क्यों करी, कहि बारम्बारा॥
भुज गहि ताहि बतावहु, जो हृदय बतावति।
'सूरज' प्रभु कहै नागरी, तुम तें को भावति॥

इसी नायिका मान में 'दूती' का भी प्रमुख स्थान है। उसका मुख्य कार्य रुष्ट नायिका को नायक के अनुकूल करना है। दूती मानवती नायिका को मान त्यागने के लिए कैसे उपदेश कर रही है,यह निम्न पद में देखिए।

वर्षा काल है नदियाँ समुद्र से मिलने जा रही हैं, लतायें द्रुमों से मिल रही हैं। फिर यौवन के समय उक्त उद्दीपक वातावरण में तुझे प्रिय को मिलना चाहिए—

यह ऋतु रूसिवे की नाहीं।
बरसत मेघ मोदिनी के हित, प्रीतम हरषि मिलाहीं॥
जे तमाल ग्रीषम ऋतु डाहीं, ते तरुवर लपटाहीं।
जे जल बिनु सरिता ते पूरन, मिलन समुद्रहिं जाहीं॥
जोबन-धन है दिवस चारि को ज्यों बदरी की छाँहीं।
मैं दम्पति रस रीति कही है, समुझि चतुर मन माहीं॥

अवस्थानुसार दश नायिका भेदों में "वासकसज्जा" के अनुकूल निम्न कथन को देखिए—

राधा को मैं तब ही जानी।
अपने कर जे माँग सँवारे रचि-रचि बेनी वानी॥
मुख भरि पान मुकुर लै देखति तिनसों कहत अयानी।
लोचन आँजि सुधारति काजर छाँह निरखि मुसकानी॥
बार बार उरजनि अवलोकति उनते कौन सयानी।
'सूरदास' जैसी है तैसी मैं वाको पहिचानी॥

प्रिय मिलन के लिए उत्सुक 'उत्कण्ठिता' नायिका का चित्र निम्न पद में देखिए। नायिका श्याम की बाट जोह रही है। कभी बिस्तर झाड़ती

है, कभी नीद सी आई जान पानी से आँख धोती है; कभी अन्दर जाती है, कभी बाहर आती है—

चन्द्रावली स्याम मग जोवति ।
कबहुँ सेज कर झार सँवारति, कबहुँ मलय रज भोवति ॥
कबहुँ नैन अलसात जानि कै, जल लै लै पुनि धोवति ।
कबहुँ भवन, कबहुँ आँगन ह्वै ऐसे रैनि विगोवति ॥
कबहुँ बिरह जरति अति व्याकुल, आकुलता मन में अति ।
'सूर स्याम' वहु रमनि-रमन पिय, यह गहि तब गुन तोवति ॥

सोलहों शृङ्गारों से अपने को सजाकर प्रिय का अभिसार करने जाती हुई 'अभिसारिका' का चित्रण इन पंक्तियों में देखिए—

प्यारी अङ्ग शृङ्गार कियो ।
बेनी रची सुभग कर अपने टीका भाल दियो ॥
मोतियन माँग सँवारि प्रथम ही केसरि अङ्ग सँवारि ।
लोचन आँजि सवन तरवन छवि, को कवि कहै निवारि ॥
नासा नथ अति ही छवि राजत, बीरा अधरन रंग ।
नव सत साजि चली चोली बनि, 'सूर' मिलन हरि संग ॥

'प्रेमासक्ता' नायिका का यह चित्र है—

कबहुँ मगन हरि के नेह ।
स्याम संग निसि सुरति को सुख भूल अपनी देह ।

सूरदास के पदों में 'खण्डिता' नायिका के अनुकूल कथन पर्याप्त परिमाण में मिलते हैं। निम्न पद में प्रातःकाल नायक को अन्य संसर्ग के चिन्ह दर्पण लेकर नायिका द्वारा दिखाने का वर्णन है—

प्यारी चितै रही मुख पिय को ।
अंजन अधर कपोलनि वन्दन लाग्यो काहू त्रिय को ।
तुरत उठी दर्पण कर लीन्हें देखो वदन सुधारो ।
अपनों मुख उठि प्रात देखि के तब तुम कहीं सिधारो ॥
काजर बिन्दन अधर कपोलनि सकुचे देखि कन्हाई ।
'सूर स्याम' नागरि मुख जोवत बचन कह्यो नहीं जाई ॥

सूरदास जी ने विप्रलम्भ शृङ्गार का भी मार्मिक रूप से वर्णन किया है। उसमें उन्होंने ऐसे अनेक पद कहे हैं, जिनमें विरहिणी "प्रोषितपतिका" का करुण विलाप इसी प्रकार का है। एक पद देखिए—

हरि ! परदेश बहुत दिन लाये।
कारी घटा देखि बादर की, नैंन नीर भर आये।
बीर बटाऊ पंथी हौ तुम, कौन देश ते आये ?
इह पाती हमारी लै दीजो, जहाँ साँवरे छाये।
दादुर, मोर, पपीहाबोलत, सोवत मदन जगाये।
'सूरदास' गोकुल के बिछुरे, आपुन भये पराये ॥

उक्त आधार पर हम कह सकते हैं कि सूरदास ने भक्तिकालीन कवि होने के नाते यद्यपि परिभाषा सहित नायिका भेदों का वर्णन नहीं किया तो भी शृङ्गारिक कथन होने के कारण नायिका भेद का स्वाभाविक विकास हो गया है।

प्रश्न १४—'सूर-सूर, तुलसी ससी' इस युक्ति की समीक्षा कीजिये।

उत्तर—सूरदास एवं तुलसी हिन्दी साहित्याकाश के दो परमोज्ज्वल नक्षत्र हैं। इनमें किसका प्रकाश अधिक एवं किसका न्यून है, यह बतलाना बड़े से बड़े समीक्षक के लिये भी दुष्कर है अनेक मनीषियों ने अब तक इन दोनों महात्माओं की तुलना की है। किसी ने अपनी मत्यानुसार सूर को श्रेष्ठ सिद्ध किया है तो किसी ने तुलसी को। प्रश्न में हमने 'सूर सूर तुलसी ससी ऐसा कहा है, जिस विद्वान् ने यह युक्ति प्रचलित की सम्भवतः उसने सूरदास जी को अधिक महत्व दिया है, किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि आज तक सभी विद्वानों का कथन विवाद पूर्ण रहा है और आगे भी रहेगा। उक्त कथन के सन्बन्ध में कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ नीचे दी जाती हैं। बाबू श्याम-सुन्दरदास ने लिखा है—

"तुलसी का क्षेत्र सूर की अपेक्षा भिन्न है। व्यवहारदशाओं की अधिकता तुलसी तथा प्रेम की अधिक विस्तृत व्यंजना सूर के काव्य में प्राप्त होती है, पर

शुद्ध कवित्व की दृष्टि से दोनों का समान अधिकार है। सूरदास के सम्बन्ध में निम्नांकित दोहे को हम अनुचित नहीं समझते"—

"सूर सूर तुलसी ससी आदि"

इसी विषय में मिश्र बन्धुओं ने लिखा है—

"हम लोगों का अब यह मत है कि हिन्दी में तुलसीदास सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। उन्हीं के पीछे सूर का नम्बर आता है। महात्मा सूरदास हिन्दी की वाल्मीकि हैं। वाल्मीकि के समान यह हिन्दी के प्राचीन सत्कवि हैं ....।"

सूरदास व तुलसी दास पर सबसे अधिक विवेचन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। उनके विवेचन का सार यह है कि—

(क) तुलसी का ब्रजभाषा और अवधी भाषा दोनों पर समान अधिकार था और उन्होंने जितनी शैलियों की काव्य रचना प्रचलित की उन सब पर उत्कृष्ट रचना की है। यह बात सूर में नहीं हैं। सूरसागर की पद्धति पर वैसी मनोहरणी और सरस रचना गीतावली में विद्यमान है। पर राम चरितमानस और कवितावली की शैली की सूर की कोई कृति नहीं है।

(ख) मनुष्य जीवन की जितनी अधिक दशायें, जितनी अधिक वृत्तियाँ तुलसी ने दिखाई हैं सूर ने नहीं।

(ग) तुलसी ने चरित्र-चित्रण द्वारा जैसे आदर्श स्थापित किये हैं वैसे सूर ने नहीं।

(घ) तुलसी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है, सूर की एक मुखी।

(ङ) तुलसी में लोक संग्रह व समन्वय का भाव विद्यमान है, सूर का ध्यान इस ओर गया ही नहीं इस प्रकार शुक्ल जी ने तुलसीजी को ही मूर्द्धन्य स्थान दिया है।

हमारी दृष्टि से ये दोनों ही कवि हिन्दी कवियों के मुकुटमणि हैं एवं अपने-अपने क्षेत्रों में एक दूसरे से बढ़कर हैं। हिन्दी का तीसरा कोई भी कवि इनकी समता नहीं कर सकता।

संस्कृत साहित्य में सूरदास से पूर्व भी कृष्ण साहित्य प्रचुर मात्रा में विद्यमान था श्रीमद्भागवत, महाभारत, गीतगोविन्द आदि में कृष्ण चरित्र ही हैं। सूर ने अपने कृष्ण को नया ही रूप दिया। वे भागवत के दुख-मोचन

भी नहीं, महाभारत के नीति-विशारद भी नहीं, एवं गीत-गोविन्द के नटवर भी नहीं। वे तो सूर के नन्दनन्दन, रसिक शिरोमणि हैं। सूर ने अपने काव्य में वात्सल्य शृंगार (वियोग-संयोग) दोनों का जैसा सुन्दर वर्णन किया आज तक वैसा कोई भी नहीं कर सका।

इसी प्रकार गोस्वामी जी से पूर्व भी राम काव्य पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था। वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण एवं रघुवंश, ये सभी राम काव्य हैं। किन्तु गोस्वामीजी का दृष्टिकोण उक्त तीनों से भिन्न था। वस्तुतः उन्होंने उक्त तीनों काव्यों की प्रमुख बातों का समावेश मानस में किया। कालिदास का कवित्व एवं अध्यात्म रामायण की धार्मिकता का इसमें अद्भुत सम्मिश्रण है। अतः रामायण में भक्ति और कवित्व का अपूर्व मणि-कांचन संयोग हुआ है।

पांडित्य की दृष्टि से भी दोनों ही महात्मा पूर्ण पण्डित हैं। भारतीय वेदान्त व दर्शन-शास्त्र के दोनों ही विशेषज्ञ थे। दोनों ही भक्ति का निरूपण करना चाहते थे। वेदान्त के तत्त्व दोनों महाकवियों के काव्यों में विद्यमान हैं, यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि गोस्वामीजी समन्वयवादी थे; अतः उनके काव्य में सभी वादों एवं मतमतान्तरों का समन्वय है। सूरदासजी को अन्य मतों से कोई अभिप्राय ही नहीं था। अतः उन्होंने केवल पुष्टिमार्ग के अनुरूप ही अपने सिद्धान्तों का चित्रण किया। जहाँ तक कविता के भाव तत्व व कला तत्त्व का प्रश्न है, उसमें भी दोनों समान हैं, किसी को भी हम कम नहीं कह सकते, यद्यपि कुछ आलोचकों ने गोस्वामीजी के भावतत्व को सूरदासजी के भावतत्व से कम बताया है।

तुलसी के काव्य में जीवन की अनेक दशाओं का उल्लेख है। राम पुत्र, भाई, पति, भक्त वत्सल, योद्धा एवं मर्यादा रक्षक हैं। तुलसीदासजी ने भगवान राम के मर्यादा स्वरूप को ही लिया है, किन्तु सूरदास जी ने कृष्ण के बाल व किशोर रूप को ही लिया है। उसमें जीवन की विभिन्नता नहीं दर्शायी गई। कृष्ण चरित की एक विशेषता भी है कि वे हमारे सामने अलौकिक रूप में आते हैं। अनेक सम्बन्धों से आबद्ध होने पर भी वे उनसे अलिप्त रहते हैं। इसी कारण उनका चरित्र लौकिक सम्बन्धों में विकसित नहीं हुआ। मानस

के राम लौकिक भी हैं, उनका लौकिक जीवन भी विकसित हो पाया है यहाँ तक अपने उद्देश्य में दोनों कवि पूर्ण सफल हुए हैं।

जहाँ तक प्रबन्धात्मकता का प्रश्न है, वहाँ अवश्य दोनों की समता नहीं हो सकती। तुलसी का विषय ही प्रबन्ध के अनुकूल है। उसमें उन्होंने दोहा चौपाई और गीतिकाव्य, कवित्त, सवैयों का भी प्रयोग किया है। सूरदासजी ने गीतिकाव्य की रचना की है। उसमें उन्होंने कृष्ण के एक ही स्वरूप को प्रमुख रूप से चित्रित किया है। यद्यपि कृष्ण के जीवन की अन्य घटनायें भी उसमें हैं, पर वे तारतम्य-रहित हैं। तुलसीदासजी ने भी गीतिकाव्य पर्याप्त लिखा है। अतः इस क्षेत्र में दोनों ही समता करते हैं। पर जहाँ तक गीति की सुन्दरता का प्रश्न है, सूरदास की गीति के आगे तुलसी की गीति नीरस है भावसौंदर्य के जो उदाहरण भ्रमरगीत व बालकृष्ण के सौंदर्य वर्णन में हैं, तुलसी की गीतावली में नहीं।

वात्सल्य व श्रृंगार का निरूपण दोनों ही कवियों ने किया है, पर देखने पर ज्ञात होता है कि इसमें जितनी अधिक सफलता सूर को मिली उतनी तुलसी को नहीं। जो मनोहारिणी बाल क्रीड़ा व वचन-वक्रता सूरदास में है वह तुलसी में कहाँ ?

कहीं-कहीं तो दोनों की रचनाओं में अद्भुत साम्य है। तुलसी सूर से प्रभावित भी हैं। उदाहरण के लिए मानस का यह परम सुन्दर प्रसंग है। बनवास के अवसर पर जब सीता अपने पति व देवर के साथ चली जा रही थी, उस समय ग्रामीण स्त्रियों ने सीता से उन पुरुषों का परिचय जानना चाहा। सीता ने जिस ढंग से उत्तर दिया उसे पढ़कर कोई भी सहृदय आनन्द-विभोर हुए विना न रहेगा। ये प्रसंग भी सूर काव्य से प्रभावित हैं। 'मानस' का प्रसंग देखिए—

"कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुख कहहु को अहहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेह मय मंजुल बानी। सकुचि सीय मन मँह मुसुकानी ॥
तिन्हहिं बिलोकि विलोकत धरनी। दुहुँ संकोच सकुचति वर बरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नैनी। बोली मधुर बचन पिक बैनी ॥
सहज सुभाव सुभग तनु गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे ॥

बहुरि बदन बिधु अँचल ढांकी । पिय तन चितै भौंह करि बांकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नैननि । निज पति कहेऊ तिर्नाहि सिय सैननि ॥
यही प्रसंग "कवितावली" में इस प्रकार है—
"पूछति ग्राम बधू सियसौं" "कहौ साँवरे से सखि ! रावरे को हैं ?"
सुनि सुन्दर बानी सुधारस सानी; सयानि हैं जानकि जानि भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समझाई कछू मुसकाई चली ॥"
सूर काव्य में यही प्रसंग इस प्रकार मिलता है—

कहि धौं सखी ? बटोही को हैं ?
अद्भुत बधू लिए संग डोलत, देखत त्रिभुवन मोहैं ।
यहि में को पति त्रिया तुम्हारे, पुरतिय पूछहिं धाई ॥
राजिव नैन मैन की मूरति, सैननि दियो बताई ॥

सूरकाव्य का और भी स्पष्ट प्रभाव तुलसीदास की "गीतावली" पर दीखता है । देखिये—

जसोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावै, दुलराई, मल्हावै, जोइ सोइ कछु गावै ॥
—सूरदास

पालने रघुपतिहि झुलावै ।
लै-लै नाम सप्रेम सरल स्वर, कोसल्या कल कीरति गावै ॥
—तुलसीदास

इस प्रकार हम तुलसीदास व सूरदास में कई समानताएँ देख सकते हैं । तुलसीदासजी के काव्य में महान् गुण हैं, पर सूरदासजी ने जिस सीमित क्षेत्र में ही सवा लक्ष पद रचकर अपना अपूर्व कौशल दिखलाया है, निश्चित ही उसमें तुलसी उनकी समता नहीं कर सकते । इन तथ्यों को देखते हुए "सूर-सूर तुलसी ससी" की सत्यता पर आक्षेप नहीं किया जा सकता ।

प्रश्न २५—सूरदास की विनय भावना का परिचय दीजिये ।

उत्तर—महाप्रभु वल्लभाचार्य से भेंट होने के पूर्व सूर भगवद्भक्ति विषयक पद बनाकर गाया करते थे । दास्य, दैन्य, भर्त्सना, विचारणा, पश्चाताप

आदि भावों से सम्बन्ध रखने वाले विनय के पद उसी समय के लिखे हुए हैं।

विनय के लिये एक ऐसे आधार की आवश्यकता है, जिसके लिए विनय की जाये। सूरदास ने प्रारम्भ में ही इस विषय में अपना मत स्थिर कर लिया है। उनके विनय का आलम्बन निर्गुण का सगुण अवतार (कृष्ण) है। 'अविगत' निर्गुण के प्रति विनय की भावना रहस्यमूलक, अस्पष्ट और भ्रामक हो सकती है; अतः सूर ने अपना आधार 'सगुण' माना—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अंतरतम ही भावै॥
परम स्वादु सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर, जो जानै जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालम्ब कित धावै।
सब विधि अगम विचारहि तातें सूर सगुन लीलापद गावै

सूर के "सगुन" हैं, "वासदेव", जदुनाथ गुसाई"। देखिए—

वासुदेव की वड़ी वड़ाई।

× × × ×

विनु दीन्हें ही देत सूर प्रभु ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं॥

\+ + +

वेद उपनिषद जासु कौं निरगुन ही बतावै।
सोई सगुन सूर नन्द की दाँवरि बँधावे॥

सूर को यह निश्चय है कि निरगुन व सगुन एक ही हैं। किसी कारण से ही "निरगुन" "सगुन" अवतार लेता है। उसमें दोकारण हैं—

(क) ब्रह्म की लीला, (ख) भक्तों को आनन्द देना एवं भक्त के दुखों को दूर करना।

पहले वे भगवान् के स्वभाव का वर्णन करते है, क्योंकि भक्त को उसी स्वभाव का आश्रय लेना है। भगवान् के स्वभाव के अङ्ग भक्त वत्सलता, भक्त की धृष्टता सहना, भक्त का कष्ट हरण, शरणागत वतत्सलता, दीन ग्राहकता, गाढ़े दिन की मित्रता और अभय दान हैं। भगवान् के इसी स्वभाव के

विश्वास को लेकर ही भक्त आगे बढ़ता है। वह सांसारिक वैभव को त्याग भगवान् की सम्पत्ति में ही अपने को धनी मानता है—

कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा-नाथ मनोरथ पूरन, सुख निधान जाकी मौज धनी॥
अर्थ, धर्म अरु काम, मोक्ष फल चारि पदारथ देत गनी।
इन्द्र समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी॥
कहा कृपिन की माया गनिए, करत फिरत अपनी अपनी।
खाइ न सकै खरचि नहिं जाने, ज्यों भुजङ्ग सिर रहत मनी॥
आनँद मगन राम गुन गावै, सुख सन्तापि की काटि तनी।
सूर कहत जे भजत राम को, तिनसौं हरि सदा बनी॥

आगे वह अपने को महाराजाओं से भी बड़ा मानता है, भगवान् का ऐश्वर्य ही उसका ऐश्वर्य है—

हरि के जन की अति ठकुराई।
महाराज दिविराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई॥

यहाँ तक मन को विश्वस्त करने के बाद भक्त विनय की भूमिका में उतरता है। वह पहले भगवान् से माया और तृष्णा के परिहार की प्रार्थना करता है। क्योंकि भक्ति के दो प्रबल शत्रु हैं। सूर ने माया का वर्णन कई रूपकों में किया है—

माया नटी लकुटी कर लीन्हें।

× × ×

माधौ जू यह मेरी इक गाई।
अब आजु तें आप आगे दई ले आइये चराई॥
है अति हरहाइ हर कतहू बहुत अमारग जाति।
फिरत वेद बन ऊख उखारत सब दिन अरु सब राति॥

इस माया नटी के काम हैं भगवान् से विमुखता उत्पन्न करना, मन में अभिलाषाओं की तरङ्ग उठाकर मिथ्या से परिचय कराना और उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न करना। यही माया का भ्रम है और यही भ्रम बाद में हिंसा,

मद, आशा, निद्रा, काम, तृष्णा आदि का कारण होता है। आशा का वर्णन सूर ने निम्न प्रकार से किया है—

यह आशा पापिनी यहै।
तजि सेवा बैकुण्ठ नाथ की, नीच नरनि के संग रहै॥
जिनको मुख देखत दुख उपजत, तिनको राजा राम कहै।
धन-मद-मूढनि, अभिमाननि-मिलि लोभ लिये दुर्बचन सहै॥

किन्तु भक्त का अन्तिम आश्रय जहाँ भगवान् का अनुग्रह है वहाँ उसे अपनी ओर से भी प्रयत्नशील होना पड़ता है। भक्त का मुख्य प्रयत्न होता है—आत्म शुद्धि एवं आत्म प्रबोध—

रे मन छांड़ि विषय कौ रचिवौ।

× × ×

रे मन अजहूँ क्यों न सम्हारै?

कवि अपने मन कौ समझाता है—

रे मन, आपु को पहिचानि।
सब जनम तैं भ्रमत खोयो, अजहुँ तौ कछु जानि॥
ज्यों मृगा कस्तूरि भूलै सुतौ तकि पास।
भ्रमत ही वह दौरि ढुंढै, जबहिं पावै वास॥

+ + +

जब भगत भगवंत चीन्है मरम मन ते जाई।

भगवान् की कृपा से ही मन स्वच्छ होता है, पर भक्त को भी कुछ साधना करनी ही चाहिए। वह साधनायें तीन हैं—

(क) नाम स्मरण, (ख) भगवत् कथागान, (ग) भगवत् स्वरूप चिन्तन। इनके अतिरिक्त गुरुभक्ति, दैन्य व सत्सङ्ग भी चाहिए और इसके साथ ही चाहिए आत्म प्रवादान—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिहि तन दियो ताहि विसार्‌यो ऐसो नौन हरामी॥
भरि भरि उदर विषय कौ धावौं जैसे सूकर ग्रामी।
हरिजन छांड़ि हरि विमुखन की निसिदिन करत गुलामी॥

पापी कौन बड़ो है मोते सब पतितन में नामी ।।

× × × ×

माधौ जू , हौं पतित सिरोमनि ।

और न कोई लायक देखौ, सत सत अघ प्रति रोमनि ।।

कभी भक्त भगवान की शरण में आ जाता है—

अब हौं हरि सरनागति आयौ ।

वह भगवान् की कृपा के प्रति भी अवस्था रखता है—

भक्ति बिना जो कृपा न करते तो हौं आस न करती ।

बहुति पतित उद्धार किये तुम हौं तिनको अनुसरती ।।

इन्हीं भावनाओं के प्रति भक्त ढीठ हो जाता है और इसी ढीठता के बल पर वह कहता है—

जो पै तुम ही बिरद बिसारौ ।

तो कहौ कहाँ जाइ करुनामय कृपिन करम कौ मारौ ।।

× × ×

दीनानाथ अब बारि तिहारी ।

यही नहीं अन्त में भक्त भगवान् के उसी कृपालु स्वभाव से उत्साहित होकर कहता है—

आजु हौं एक एक करि टरिहौं ।

कै तुमहीं कै हमहीं, माधौ, अपनि भरोसै लरिहौं ।।

हौं तो पतित सात पीढ़िन को, पतित ह्वै निस्तरिहौं ।

अब हौं उघरि नच्यो चाहत हों तुम्हें बिरद बिन करिहौं ।।

कत अपनी परतीति नसावत मैं पायो हरि हीरा ।

सूर पतित तब ही उठि है प्रभु जब हँसि दैहो बीरा ।।

यही है सूर की विनय भावना में कार्य करने वाला मनोविज्ञान । वे सभी स्थानों पर भगवान् से मुक्ति माँगते है । इसके लिए वे अपनी पतितावस्था और भगवान् की पतित उद्धारन बानी का आश्रय लेते हैं । सूर की भक्ति में पतित भावना इतनी अधिक है कि वह उनकी भक्ति को कहीं-कहीं विचित्र

रूप भी दे देती है। इस अवस्था का चित्रण उन्होंने रूपकों के सहारे किया है—

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महा मोह को नूपुर बाजत निन्दा सबद रसाल।
भरम भर्‌यौ मन भयौ पखावज चलत कुसंति चाल॥
तृष्णा नाद करत घर भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ लोभ तिलक दियौ भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल-सुधि नहीं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूर करौ नन्दलाल॥

× × × ×

अब कै राखि लेहु भगवान्।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया पारधि साधे बान॥
ताकें डर मैं भाज्यौ चाहत ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहुँ भाँति दुख भयौ आनि यह कौन उबारे प्रान॥
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सरु लग्यौ सचानहिं जय जय कृपानिधान॥

सूर की यह भक्ति भावना जिस कृष्ण रूप के प्रति प्रकट हुई वह निर्गुण से कम "अविगत" नहीं, किन्तु सगुण रूप होने के कारण उसकी सुन्दरता भक्त के मन में समा जाती है, जिससे वह कुछ तृप्त अवश्य हो जाता है। वस्तुतः सूर का विषय विनय नहीं, सगुण सौंदर्य का अवलोकन, आस्वादन और ध्यान ही उसका लक्ष्य है। यह भाव तो तभी तक था, जब तक आचार्य जी के दर्शन नहीं हुए थे।

प्रश्न २६—निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।
वेणु, गोपियां, माया, पुष्टिमार्ग, राधा एवं रास।

उत्तर—

वेणु (मुरली)

श्रीकृष्ण की मुरली उन पर शासन करती है। गोपियों ने इस विषय को

लेकर कई उपालम्भ दिए हैं। सूर ने कई रूपों में मुरली का वर्णन किया है एवं प्रत्येक रूप में उनकी रागमयी वृत्ति वंशी ध्वनि के साथ तदाकार हो गई है। अद्भुत है यह मुरली जिसको सुनते ही सिद्धों की समाधि भी भंग हो जाती है। सूरसागर में मुरली के प्रभाव के सम्बन्ध में प्रथम पद इस प्रकार है—

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी,
सुनि ध्वनि सिद्ध समाधि टरी।
सुनि थके देव विमान। सुर वधू चित्र समान।
ग्रहनक्षत्र तजत न रास। यही बँधे ध्वनि पास।
सुनि आनन्द उमँग भरे। जल थल अचल टरे।
चर-अचर गति विपरीत। सुनि बेनु कल्पित गीत।
झरना झरत पाखान। गन्धर्व मोहें गान।
सुनि खग-मृग मौन धरे। फल तृण सुधि बिसरे।
सुनि धेनु थकित हरे। तृन दन्त नाहि गहे।
बछरा न पीवें छीर। पंछी न मन में धीर।
द्रुम बेलि चपल भये। सुनि पल्लव प्रकट नये।
जे बिटप चंचल पात। ते-निकट को अकुलात।
अकुलित जे पुलकित गात। अनुराग नैंन चुचात।
सुनि चंचल पवन थके। सरित जल न सके।
सुनि धुनि चलीं ब्रज नारि। सुत देह गेह बिसारि।
सुनि थकित भयो समीर। बहै उलटि यमुना नीर।

यह है मुरली का व्यापक प्रभाव, क्या जड़, क्या चेतन सब के सब उसी के वश में है। और भी देखिए—

"राधिका-खन बन भवन सुख देखिकै, अधर धरि बेनु सुललित बजाई।
नाम लै लै सकल गोप कन्यान के सबन के श्रवण वह धुनि सुनाई॥

अर्थात् मुरली की ध्वनि कानों में पड़ते ही प्रत्येक गोपी ने अनुभव किया कि जैसे उसी का नाम ले लेकर मुरली उसे ही बुला रही है। सोलह सहस्त्र

गोपियाँ और प्रत्येक का नाम पुकारती हुई वंशी की एक-एक ध्वनि ! सन्देश भी सबके लिए पृथक-पृथक । अद्‌भुत है, यह मुरली । जैसे जिसको चाहती है उसके कानों में वैसी ही ध्वनि डाल देती है । मुरली क्या है ? मानो भगवान की कार्य साधिका यन्त्र रूप माया है जो विश्व के समग्र प्राणियों को अपने अपने कार्य में निरत कर रही है, यह कार्य क्या है ? संसार के संसरण का । प्रत्येक के स्वकर्त्तव्य पालन का भाव क्या हैं ? यह भाव एक ही है, अपना-अपना कार्य करते हुए उधर ही दौड़ लगाना, उसी केन्द्र में जाना । गोपियों का कृष्ण के पास जाना । अध्यात्म पक्ष में जीवों का परमात्मा की ओर उन्मुख होना है, जो धारा संसार की ओर बह रही थी, उसे उलट कर ईश्वर की ओर बहाना । सूर ने लिखा है—

मुरली स्याम अनूप बजाई, विधि मर्याद सबनि भुलाई ।
निशि बन को युवती सब धाईं, उलटि अंग आभूषण ठाई ।।
कोउ चरण हार लपटाई, काहू चौकी भुजनि बनाई ।
अँगिया काटि लहँगा उरलाई, यह शोभा बरणी नहिं जाई ।।

भाव यह है कि गोपियों की जो वृत्ति संसार में रमण कर रही थी वह मुरली नाद सुनते ही परमार्थ की ओर लग गई । साधक भी साधना करता हुआ कभी-कभी अनुभव करता है कि कोई उसे बुला रहा है । गोपियों को भी ऐसा ही अनुभव हुआ, वे चल पड़ीं । वे मानो साधिका हैं । मदिरा से मत्त मनुष्य को अपना ध्यान नहीं रहता । गोपियों को भी इसी स्थिति के कारण पैरों में हार लहँगा छाती पर है । वे अँधेरे को छोड़ प्रकाश की ओर चली हैं । जिसकी वृत्ति उधर हो गई है वह इधर की सँभाल क्यों करने लगा ? यही तो मुरली का रहस्य है ।

अब प्रश्न यह है कि मुरली का ध्यान अध्यात्म क्षेत्र में क्या है ? कुछ विद्वानों ने इसे शब्द ब्रह्म का नाम दिया है । जो ब्रह्म सर्व-व्यापक है, उसकी वाणी भी सर्व-व्यापक है । अतः वेणु ध्वनि परब्रह्म का शब्द रूप है । अन्य विद्वानों ने इसे नाम लीला का रूप दिया है । भक्त नाम का जाप करते हुए जिस ध्वनि को अपने अन्तस्तल में श्रवण करता हैं, वही तो वंशी की ध्वनि है । कहीं-कहीं वंशी को योगमाया का रूप भी माना गया है (जैसे कि

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं) जो प्रभु की अपरा शक्ति की वाचक है। श्रेय और प्रेय दोनों मार्ग यहीं से आरम्भ होते हैं। श्रेय को उपनिषदों ने "परा विद्या" और "प्रेय" को "अपरा विद्या" कहकर पुकारा है। वैष्णव आचार्यों का कथन है कि वंशी निनाद के सम्मुख अभ्युदय और निश्रेयस दोनों प्रकार का सुख फीका है।

वेणु में तीन अक्षर हैं :-व + इ + णु। "व" ब्रह्म सुख का द्योतक है। "इ" सांसारिक सुख को प्रकट करती है। इन दोनों प्रकार के सुखों को जो "णु;" अर्थात् मात करने वाली है, वह है वेणु। आचार्य महाप्रभु ने इसे "ब्रह्मा, नन्ददपि अधिकानन्द सार भूता" अर्थात् मुरली की ध्वनि ब्रह्म के आनन्द से भी अधिक आनन्द-दायिनी कहा है। इतना ही नहीं उन्होंने इसे श्रुति [शब्द] कहा है। वस्तुतः शब्द ब्रह्म ही परब्रह्म है।

सूर ने इस मुरली पर बहुत कुछ लिखा है।

वंशी बन कान्ह बजावत
आइ सुनों श्रवणनि मधुरे सुर राग रागनी ग्यावत।
सुर श्रुति तान बँधान अमित अति सप्त अतीत अनागन-आवत ॥
जनु युग जुरि वर वेष सजल मथि, बदन पयोधि अमृत उपजावत।

गोपियाँ

सूरसागर प्रधान रूप से हरिलीला काव्य है। हरिलीला गोप-गोपियों की लीला है। राधा-कृष्ण भी गोपी-गोप हैं। श्रीकृष्ण का अवतार गोप रूप में ही हुआ था। सूरसागर में प्रभु के इसी अवतारी रूप की लीलाएं वर्णन की गई हैं।

अब प्रश्न है कि यदि कृष्ण ईश्वर हैं—सूर ने कृष्ण को परब्रह्म माना है—तो गोपियाँ क्या हैं? गोपियाँ उसी ब्रह्म की शक्ति हैं। शक्ति अपने आश्रय से कभी पृथक नहीं होती। अतः कृष्ण और गोपियों में कोई अन्तर नहीं। एक गुणी है। दूसरा गुण। सूर ने लिखा है—

गोपी-ग्वाल कान्ह दुइ नाहीं ये कहुँ नेक न न्यारे।

अध्यात्मपक्ष में कृष्ण आतमा हैं तो गोपियाँ इस आतमा की वृत्तियाँ हैं,

किन्तु आत्मतत्त्व के एक होते हुए भी वृत्तियां अनेक और भिन्न रूपा हैं। इसीलिये भागवत व सूरसागर में उनके कई रूप लक्षित होते हैं। भागवत् में लिखा है—

"गोप जाति प्रतिच्छन्ना देवा गोताल रूपिण" अर्थात् गोपी व गोपों के रूप में देवता ही प्रकट हुए हैं—

सूरसागर में भी लिखा है—

यह बानी कहि सूर सुरन को अब कृष्ण अवतार।
कह्यो सबनि ब्रज जन्म लेहू सँग हमरे करहु बिहार।

किन्तु भगवान् की प्रकृति स्वरूपा तथा देव विग्रही गोपियों के अतिरिक्त कुछ गोपियाँ ऐसी थीं जो पूर्व जन्म में देवकन्याओं. श्रुतियों, तपस्वी ऋषियों या भक्तों के रूप में रह चुकी थीं और भगवान् के साथ उनकी सेवा करने के लिये अवतीर्ण होना चाहती थीं उनमें से बहुतों ने गोपियों के रूप में जन्म लिया। पद्मपुराण में लिखा है कि उग्र तपानाम के मुनि सुनद नाम के गोप की कन्या सुनन्दा के रूप में अवतीर्ण हुये।

सूर ने एक स्थान पर गोपियों को वैदिक ऋचाओं का अवतार कहा हैं—

ब्रज सुन्दरि नहिं नारि, ऋचा श्रुति की सब आहिं।
(मैं ब्रह्म) अरु शिव पुनि लक्ष्मी तिन सम कोऊ नाहिं।

बल्लभाचार्य जी ने एक स्थान पर गोपियों को लक्ष्मी अंश और उसके साथ विचरण करने वाली कहा है [श्रुत्यत्तररूपणां गोपिका नाम्]।

इस प्रकारे गोपियाँ भिन्न-भिन्न रूपा थीं। इनमें कुछ देवकन्यायें थी, कुछ ऋषि थे, कुछ ऋचायें थी और कुछ स्वयं प्रभु की अन्तरङ्ग शक्ति थीं। इन गोपियों की संख्या सोलह सहस्त्र कही गई है।

माया

[यद्यपि सूर के दार्शनिक सिद्धान्तों में हम माया के स्वरूप का वर्णन कर चुके हैं, तो भी संक्षेप में यहाँ पर बतायेंगे।]

आचार्य शङ्कर ने माया को अनिर्वचनीय शक्ति कहा है। इसी से अभिभूत ब्रह्म का नाम ईश्वर है। ईश्वर ही सृष्टि की रचना करता है। ब्रह्म निर्गुण एवं तटस्थ है। अतः इस संसार के मूल में भी माया ही है। वैष्णव

सम्प्रदाय में भी माया है, परन्तु वह सांख्य की प्रकृति के समान है। माया त्रिगुणात्मिका है। इसी से त्रिगुणात्मक [सत्व, रज, तम] जगत की उत्पत्ति हुई है। सूर ने भी माया का यहीं स्वरूप स्वीकार किया है। देखिए—

माया को त्रिगुणात्मक जानों। सत-रज-तम ताको गुण मानों ॥
जड़ स्वरूप सब माया जानों। ऐसो ज्ञान हृदय में आनों ॥

अतः सूरसागर में माया जड़ प्रकृति का ही रूप है। यह माया भगवान् के अधीन है, उसकी दासी है—

सो हरि माया जा बस मांहीं।

× × ×

परम पुरुष अवतार माया जिसकी दासी।

माया वह ग्रन्थि है, जो जीव को गृह, धन, पुत्र कलत्र आदि के प्रेम में बाँध देती है। सूर ने माया को मोहिनी, भुजंगिनी, नटनी आदि कहा है। देखिए—

माया नठिनि लकुट कर लीन्हें, कोटिक नाच नचावै।
दर-दर लोभ लागि लै डोलति, नाना स्वाँग करावै ॥

× × ×

माया विषय भुजँगिनी को विष उतारयौ नाहिंन तोई।
इसी माया को सूर ने अविद्या और तृष्णा कहा है—

माधव जू मेरी ईक गाई।
अब आजु तैं आप आगे, ले आइये चराई ॥

× × ×

माधव जू नेंकु हटकौ गाई।
यह माया असत है, इससे बना संसार भी असत है।

पुष्टिमार्ग

आचार्य वल्लभ के नित्याचार में मङ्गलाचार, भगवान् का शृङ्गार, राजभोग, संध्या, आरती आदि एवं नैमित्तकाचार में हिंडोला, बसन्त फाग आदि की प्रधानता थी। सूर ने इन सभी पर पद रचना की है। उन्होंने

मानव जीवन का उद्देश्य भगवान का स्मरण करना ही बताया है। हरि नाम वह नौका है जिस पर चढ़कर भक्त भवसागर से पार हो जाता है।

भागवत् में वर्णित सर्ग, विसर्ग, स्थान,पोषण, ऊति, मनवन्तर, ईशानु कथा, निरोध और मुक्ति और आश्रय इन दस विषयों में एक पोषण भी है। आचार्य महाप्रभु ने इसी शब्द से भगवद्भक्ति को पुष्टिमार्ग नाम दिया है। पुष्टिमार्ग में भगवान् के अनुग्रह पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। वह अनुग्रह ही भक्ति का कल्याण करता है जिस पर भगवान् की कृपा नहीं, वह कुलीन होते हुए भी अकुलीन है। और जिस पर भगवान की कृपा है वही कुलीन व सुन्दर है। देखिए—

जा पर दीनानाथ ढरें।
सोइ कुलीन बड़ो सुन्दर सोइ जा पर कृपा करें॥
राजा कौन बड़ा रावण तें गर्वहि गर्व गरैं।
राँकव कौन सुदामा हूँ तें आपु समान करैं॥
रूपक कौन अधिक सीता तें छन्म वियोग भरैं।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तें हरि पति पाइ वरैं॥
योगी कौन बड़ौ शङ्कर तें ताकों काम छरैं।
कौन विरक्त अधिक नारद सों निशिदिन भ्रमत फिरैं॥

अधम जु कौन अजामिल हू तें यम तहँ जात डरैं।
सूरदास भगवन्त भजन बिनु फिरि-फिरि जठर जरैं॥

यह है भगवान् के अनुग्रह का महत्व। सूरदास तो यहाँ तक कहते हैं कि—

सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभू नेंक ढरैं॥

भगवत्कृपा की प्राप्ति के लिये पुष्टिमार्ग में ज्ञान, योग, कर्म, यहाँ तक कि उपासना भी निरर्थक समझी जाती है। सूरदास कहते हैं—

कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायो।
श्रीबल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो॥

बल्लभाचार्य ने पुष्टि चार प्रकार की बताई है—[१] प्रवाह पुष्टि, [२] मर्यादा पुष्टि, [३] पुष्टि पुष्टि और [४] शुद्ध पुष्टि।

प्रवाह पुष्टि के अनुसार भक्त संसार में रहता हुआ भी श्रीकृष्ण की भक्ति

करता है। मर्यादापुष्टि के अनुसार भक्त संसार के समस्त सुखों से अपना हाथ खींच लेता है और कृष्ण के गुणगान एवं कीर्तन द्वारा भक्ति करता है। पुष्टि पुष्टि में भगवान् का अनुग्रह प्राप्त हो जाता है किन्तु साथ ही भक्त की साधना भी बनी रहती है। शुद्ध पुष्टि में भक्त पूर्णतः भगवान् पर आश्रित हो जाता है। उस अनुग्रह के प्राप्त हो जाने पर भक्त के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति इतनी अनुभूति हो जाती है कि वह भगवान् की लीलाओं से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उसका हृदय श्रीकृष्ण की लीलाभूमि बन जाता है। वस्तुतः वल्लभाचार्य इसी भक्ति को चाहते थे, क्योंकि यही सर्वश्रेष्ठ है। वह वात्सल्य सक्ति, सख्यसक्ति, काँतासक्ति, आत्मनियेदनासक्ति, तन्मयासक्ति एवं अन्त में परम विरहासक्ति को प्राप्त होता है तथा शरीर छोड़ने पर वह गोलोक वास करता है।

इन आसक्तियों के रूप देखिए—

वात्सल्याशक्ति—जेवत स्याम नन्द की कनियां।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छबि निरखत नंद रनियाँ।

सख्याशक्ति—मोहि प्रभु तुमसों होड़ पड़ी।
ना जानौं करिहौ जु कहा तुम नागर नवल हरी।

कान्तासक्ति—कहा करौं पग चलत न घर को।
नैन विमुख जन देखे जात न लुब्धे असन अधर को।

आत्मनिवेदनासक्ति—अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहरि चोलना कंठ विषय की माल॥

तन्मयाशक्ति—उरमें माखनचोर गड़े।
अब कैसे हि निकसत नाहीं ऊधो तिरछे ह्वै जु अड़े।

परमविरहासक्ति—बिन गोपाल बैरिन भईं कुंजें।
तब ये लता लगति अति शीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजें।

एक प्रकार से भागवत् के गोप व गोपी भक्त के रूपक हैं और भक्त की तरह ही भगवान् की प्राप्ति के लिये उन्हें आसक्ति की उक्त सभी दशाओं से गुजरना पड़ता है।

राधा

सूर के दार्शनिक सिद्धान्तों के वर्णन में हमने राधा का उल्लेख किया है, वहाँ उसे भगवान् की शक्ति कहा है। सूर ने राधा का निम्नलिखित रूप में अनुभव किया है—

नीलाम्बर पहिरे तनु भामिनि, जनु घन में दमकति है दामिनी।
शेष महेश लोकेश शुकादिक नारदादि मुनि की है स्वामिनी॥

जैसे गुण, गुणी से पृथक नहीं होता, शक्ति अपने आश्रय से अलग नहीं होती, उसी प्रकार राधा कृष्ण से भिन्न नहीं। दोनों शाश्वत रूप से एक दूसरे के साथ सम्बद्ध हैं—

तब नागरि मन हरष भई।
नेह पुरातन जानि श्याम को अति आनन्द भई।
जन्म-जन्म युग-युग यह लीला प्यारी जान लई॥

किन्तु काव्य के भक्ति पक्ष को देखते हुए राधा का अन्य प्रतीकार्थ भी है। राधा अनुग्रह प्राप्त भक्त का प्रतीक है जो आसक्ति की अनेक दशाओं को प्राप्त होता हुआ परम विरहासक्त हो जाता है। उस समय वह इन्द्रियों के विषय से ऊपर उठ जाता है, एवं उसका अस्तित्व केवल "विरह की पीर" मात्र रह जाता है। सूर ने कहा है—

सोरह सहस पीर तन एकै।
राधा जिव सब देह।

वैष्णव-कृष्ण भक्ति का लक्ष्य यही था कि वह कृष्ण की अन्यतम गोपी बन जाय। भागवत में इस अन्यतम गोपी (राधा) का उल्लेख है। सूरदास ने राधा को इस गोपी का अन्यतम स्थान दिया है और उसी में भक्ति की पूर्णता की कल्पना की। इस राधा की देह में सोलह हजार देहों की पीर थी, तभी तो वह कृष्ण को प्राप्त कर सकी। भक्त भी विरहासक्ति की इसी उच्चतम दशा को प्राप्त करना चाहता था। यही राधा का अन्य प्रतीकार्थ है; पहला (शक्ति) का स्वरूप तो सर्व-मान्य है ही।

रास

रास कृष्णलीला का मुख्य अङ्ग है। रास शब्द रस से बना है। "रसो

वैस:" अर्थात् भगवान् स्वयं रस-रूप हैं; आनन्दस्वरूप हैं। उपनिषदों में भी कहा गया है कि आनादस्वरूप ईश्वर से समस्त प्राणी प्रकट हुए हैं। रस रूप ब्रह्म एक केन्द्र है और ब्रह्माणु का यह चक्र उसकी परिधि है, जिसे उस प्रभू की लीला कहा जाता है। वैष्णवों की रासलीला भी इसी आनन्द के अनुभव का नाम है।

वैष्णव भक्तों ने रासलीला को वैज्ञानिक रूप दिया है। इन विद्वानों की सम्मति में वाह्य जगत् में एक आकर्षण का नियम है। इस अनन्त आकाश में अनेक सूर्य हैं, एक एक सूर्य के साथ अनेक ग्रह-उपग्रह लगे हुए हैं। सूर्य केन्द्रवर्ती हैं और समस्त ग्रह-उपग्रह उसके चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। आकर्षण की शक्ति से ही ये सब परस्पर सम्बद्ध हैं। इसी प्रकार रासलीला में कृष्ण केन्द्रस्थ सूर्य हैं। राधा तथा अन्य गोपियां ग्रह तथा उपग्रहों के रूप में है।

कुछ विद्वानों ने रासलीला को शाश्वत नृत्य के रूप में वर्णित किया है। इसी को वे शिव का नृत्य कहते हैं। शिव के पदतल की सम और विषम गति लय एवं ताण्डव नृत्य को जन्म देती है। नृत्य का यही शाश्वत रूप-रासलीला द्वारा प्रकट किया गया है।

एक अन्य विचार के अनुसार यह रासलीला शुद्ध अध्यात्म पक्ष की घटना है। इस पक्ष में श्रीकृष्ण ब्रह्म हैं तथा राधा एवं गोपियां अनेक जीव। वृन्दा-वन सहस्त्र-दल कमल हैं। यहीं तो आत्मा-परमात्मा का संयोग होता है। किंतु वैष्णव विचारों के अनुकूल आत्मा और परमात्मा मोक्ष में भिन्न-भिन्न रहते हैं। मुक्त जीव परमात्मा के साथ क्रीड़ा करते हैं; उसकी लीला में भाग लेते हैं। लीलामात्र के लिए उनका जन्म होता है। तदनन्तर वे उसी में लय हो जाते हैं। गोपियाँ भी रासलीला में कृष्ण के साथ खेल खेलती हैं। इन सभी विचारों से यही प्रतीत होता है कि रासलीला एक प्रकार का रूपक है।

यह थोड़ा सा रास वर्णन देखिए। रास आरम्भ हुआ, कितना सुन्दर समय है यह देखिये—

> आजु निशि शोभित शरद सुहाई।
> शीतल-मन्द सुगन्ध पवन बहै रोम-रोम सुखदाई॥

यमुना-पुलिन पुनीत परम रुचि-रुचि मंडली बनाई
राधा वाम अंग पर कर धरि मध्यहिं कुँवर कन्हाई

खूब रास रचा। शिव, शारदा, नारद आदि भी इस रास को देखने आते हैं। रास जब अपनी चरम-सीमा पर पहुँचता है तो सोलह सहस्त्र गोपियां द्रुत गति से कृष्ण के साथ नृत्य करती दिखाई देती हैं। एक-एक गोपी में कृष्ण व कृष्ण में एक एक गोपी समाई हुई है। रास का इतना सुन्दर दृश्य। सूर तो चाहते हैं कि निरन्तर मैं इस दृश्य को देखता ही रहूँ। इस रास के वश में सुर-नर-मुनि, नक्षत्र-चन्द्रमा आदि हो गये। इस अलौकिक रासलीला का वर्णन कौन कर सकता है? जो इसका वर्णन कर सके वह वन्दनीय है—

रास रसलीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै मुख स्रवननि तिन चरननि सिर नाऊँ॥

एवं

रास रस रीति नहिं बरनि आवै।

कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौं कहाँ इह चित्त जिय भ्रम भुलावै।

यह रासलीला विश्व की विराट् कार्य प्रणाली का मधुर आभास मात्र है। यह तो शाश्वत है। सूरदास ने कहा है—

नित्य धाय वृन्दावन श्याम।
नित्य रूप राधा व्रज धाम॥

नित्य रास नित्य जल बिहार। नित्य मान खण्ड़िताभिसार।
ब्रह्म रूप ऐई करतार। करन हार त्रिभुवन संसार।
नित्य कुंज नित्य सुख हिंडोर। नित्यहि विविध समीर झकोर।

रास की इस नित्यता को ही सूर ने भगवान् की शाश्वत लीला कहा है। आचार्य महाप्रभु ने सूर को इसी शाश्वत लीला के दर्शन कराये थे।

प्रश्न २७—हरिलीला क्या है? इसकी तात्त्विक मीमांसा कीजिए।

अथवा

"सूर ने प्रत्येक लीला के पहले उसका आध्यात्मिक संकेत उपस्थित

कर दिया है। इसको न समझ कर सूर पर उच्छृङ्खल शृङ्गार का दोष लगाना अनुचित है।" इस कथन को सिद्ध कीजिए।

उत्तर—शुद्धाद्वैत के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म में अनन्त शक्तियाँ विद्यमान हैं। यह सभी शक्तियाँ सर्वथा भगवान के अधीन रहती हैं। जब परब्रह्म वाह्यरूप लीला करते हैं तो उनकी अनन्त शक्तियाँ भी संसार में आकर अनेक रूप, गुण और नामों से उनसे विलास करती हैं। उन शक्तियों में श्रिया; पुष्टि, गिरा आदि द्वादस शक्तियाँ मुख्य हैं। ये ही शक्तियाँ श्री स्वामिनी, चन्द्रावली, राधा और यमुना आदि नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही नित्य-स्थित रहती हैं। इन्ही बारह शक्तियों से पुनः अनन्त भाव प्रकट होते हैं, जो अनेक सखी-सहचरी रूप में उसके साथ रहती हैं। इन्हीं शक्तियों के साथ क्रीड़ा करने के लिये पुरुषोत्तम अपने में से श्री वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना, श्री गोकुल, पशु पक्षी और वृक्षादिक भी प्रकट करते हैं। ये सब ब्रह्म के आधिदैविक ऐश्वर्य रूप होने से आनन्दमय चैतन्य रूप हैं, फिर भी कृष्णलीला के हेतु इन्होंने जड़त्व अपनाया है।

पुरुषोत्तम के नित्य होने से इनकी लीलायें भी नित्य एवं शाश्वत हैं।

जहाँ बृन्दावन आदि अजर जहाँ कुंज लता विस्तार।
तहाँ विरहत प्रिय प्रियतम दोउ, निगम भृङ्ग गुंजार॥
रतन जटित्न कालिंदी के तट अति पुनीत जँह नीर।
सारस-हंस-चकोर-मोर-खग-कूजत कोकिल कीर॥
जहाँ गोवर्धन पर्वत मनिमय सघन कन्दरा सार।
गोपिन मण्डल मध्य विराजत निसिदिन करत बिहार॥

अपनी इन आनन्दमयी नित्य लीला का दर्शन या ज्ञान अन्य को भी हो इस प्रकार पुरुषोत्तम की इच्छा हुई तो वेद की श्रुतियों (ऋचाओं) की प्रार्थना से पुरुषोत्तम के दर्शन हुए। उन्होंने पुरुषोत्तम से प्रार्थना की—

"श्रुतिन कह्यों कर जोर देव तुम।
नो नारायण आदि रूप तुम्हारो सु लख्यों हम।
निरगुण रहत जु निज स्वरूप लटको न ताको एव।
मन बानी ते अगम अगोचर दिखरावहु सो देव।

निरख सु छवि सब तकि रहे नव बोले यदुनाथ
जो मन इच्छा होई कहो सो मोहि कृपावर।
श्रुतिन कह्यो ह्वै गोपिका केलिकरें तुम संग।
एवमस्तु निज मुख कह्यो.......................''
सो श्रुति रूप होय ब्रज मण्डल कीन्हों रास बिहार।
नवलकुञ्ज में ग्रीस बाहु धरि कीन्हों केलि अपार।

भगवान् ने श्रुतियों की प्रार्थना कर उन्हें वरदान दिया। वरदान को पूर्ण करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण रूप में अवतरित हुए एवं श्रुतियाँ ब्रज-गोपियों के रूप में। पुरुषोत्तम के आविर्भाव के साथ ही उनका समस्त लीला-परिकर एवं लीला स्थान भी ब्रज की गोपियों और गोवर्द्धन आदि स्थानों के रूप में, भूतल में प्रकट हुए। साक्षात् गोलोक गोकुल में प्रविष्ट हुआ। गोवर्धन ने ब्रज के गोवर्धन में प्रवेश किया एवं वृन्दावन ने वृन्दावन में। इस प्रकार समस्त ब्रज तद्रूप हो गया। श्रीकृष्ण और उनका धर्म नित्य होने से उनका यह अवतार और अवतार लीला भी नित्य व शाश्वत हुई। पुरुषोत्तम की मूल लीला व अवतार लीला का नित्य सम्बन्ध है।

सूर सागर में भगवान् की दो प्रकार की लीलाओं का वर्णन है। (१) अलौकिक, (२) लौकिक। अलौकिक लीलाओं में, पूतना बध, कागासुर बध' शकटासुर बध, तृणावर्त्त बध आदि असुर बध से सम्बन्ध रखने वाली लीला वर्णित हैं। लौकिक लीलाओं में चीरहरण लीला, पनघट लीला, दान लीला, रास आदि हैं। ये लौकिक लीलाएँ लौकिक तो हैं हीं, साथ ही इन सब में कुछ न कुछ आध्यात्मिक भाव भी निहित है। इन भावों को न समझकर लोग सूरदास पर उच्छृङ्खल शृङ्गार का दोष लगाते हैं। आगे हम उक्त लीलाओं की आध्यात्मिकता पर प्रकाश डालेंगें।

रासलीला के आध्यात्मिक पक्ष में कृष्ण परब्रह्म हैं, गोपियाँ प्रकृति स्वरूपा एवं राधा उनकी सार-रूपा हैं। लीलामात्र के लिये ही उनका जन्म होता है। वह रास सारी सृष्टि में व्याप्त है और अनन्त देश एवं अनन्त काल में सदैव होती रहती है। ब्रह्म से जीव उत्पन्न होता है एवं अन्त में उसी में लय हो जाता है। साधारण मनुष्य इस भेद को नहीं समझ सकते, अतः भगवान

गोपियों की उत्पत्ति करके रूपक के रूप में अपनी लीला भक्त के समक्ष रखते हैं। जो मनुष्य लीला के वास्तविक अर्थ को समझने लगता है। वह भी उसमें भाग लेने लगता है एवं फिर वह भगवान् से भिन्न नहीं होता। भक्त की दृष्टि से लीला का यही प्रयोजन है।

अन्य रूपक में वृंदावन सहस्त्र दल-कमल है। गोप-गोपियां जीव हैं, कृष्ण मुक्त पुरुष हैं। जीव परमात्मा के साथ क्रीड़ा करते हैं एव भगवान् भी लीला में भाग लेते हैं। गोपियाँ मुरली का शब्द सुनते ही घर की सुध-बुध बिसार भगवान् की लीला में तन्मय हो जाती हैं। चारों ओर गोपियों और बीच में राधा-कृष्ण। बस सब उस समय कृष्णमय हो जाते हैं। यह रास ऐसी होती है कि देव, गन्धर्व, शिव-पार्वती भी इसमें भाग लेते हैं। रास के बीच में राधा को गर्व हो ा है, भगवान् अन्तरर्धान हो जाते हैं। वास्तव में यही गर्व भक्त से भगवान् को पृथक कर देता है। फिर राधा ने पश्चात्ताप किया और कृष्ण प्रकट होकर रास करने लगे। भक्त जब पश्चाप करता है तो भगवान पुनः अपने को प्रकट कर देते हैं।

इसी प्रकार चीर हरण लीला का आध्यात्मिक अर्थ आत्मा का माया के आवरण से पृथक् (नग्न) होकर ईश्वर से मिलना है। अपार छविधारी कृष्ण यमुना के किनारे खड़े हैं, गोपियों ने वस्त्र किनारे पर रख दिए। भगवान के हाथ में सबको वश में करने वाली मुरली (योगमाया) है। गोपियाँ यमुना में स्नान करने लगीं। अध्यात्म-पक्ष में यमुना स्नान का अर्थ है—भक्ति सरिता में निमग्न हो जाना। गोपियाँ तन्मय होकर उसमें डुबकी लगाती हैं। उनकी भक्ति रागानुगा है, उस पर माया का पर्दा है। भगवान् इस पर्दे को दूर करने के लिये तट से उनके वस्त्रों को उठा ले गये। आवरण के हटते ही भक्त व भगवान एक हो जाते हैं।

दान लीला में गोपियों के अङ्गों के दान का वर्णन है। अध्यात्मपक्ष में भक्त भगवान को अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है, उससे कुछ भी दुराव नहीं रखता। उसे अपना सर्वस्व देने में ही आनन्द होता है। यह भाव 'गोरस' के श्लेष द्वारा पुष्ट होता है। गोरस शब्द के अर्थ हैं। (१) दूध, दही, (२) इन्द्रियों का रस अर्थात् इन्द्रियानुभू ा सुख। भक्त सारे इन्द्रियों के

सुख को भगवान के अर्पण करे। इन्द्रियों के कर्म रुकते नहीं। उनसे सुख-दुख की प्राप्ति तो होगी ही, परन्तु भक्त उन्हें भगवदर्पण करके उनसे अलिप्त रह सकता है—"सर्वधर्मान् परित्यज्य—मामेकं शरणं व्रज" ऐसा होने पर "अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्ष यिष्यामि या शुचः।" दूसरे रूप में यह कर्म में अकर्म का सन्देश है—

ग्वारिन तब देखे नन्द नन्दन।
मोर मुकुट पीताम्बर काछे खौर किये तन चन्दन।
तब यह कह्यो कहाँ अब जैहौ आगे कुंवर कन्हाई॥
यह सुन मन आनन्द बढ़ायो मुख कह बात डराई।
कोउ कोउ कहति चलौ ही जाईकौऊ कहै फिरि जाई॥
कोउ को कहति कहा करि हैं हरि इनको कहा हराई।
कोउ कहत कालि ही हमको लूट लई नन्द लाल॥
सूर श्याम के गुन ऐसे हैं घरहि फिरी ब्रज वाल।

किन्तु शुद्धाद्वैत के अनुसार अनुकम्पा (पुष्टि) ब्रह्म की ओर से होती है; इसी से कृष्ण आगे बढ़ कर गोरस छीनते हैं और इस द्विविधा का निर्णय करते हैं। वह दान माँगते हैं—"दान लेहिहौं सब अँगन को।" अन्त में उन्हें दान मिल जाता है। गोपियाँ कहती हैं—

कछू दुराव नहीं हम राख्यौ निकट तुम्हारे आई।
एते पर तुमही अब जानो करनी भली बुराई॥
जो जासो अन्तर नहीं राखै सो क्यों अन्तर राखै।
सूर श्याम तुम अन्तर जामी वेद उपनिषद भाषै॥

ठीक है; भगवान् भक्त से अन्तर नहीं रखता तो भक्त ही क्यों रखे?

पनघट-प्रसङ्ग भी आध्यात्मिक रूपक है। जहाँ भक्त और भगवान में खींचातानी चलती है एक ओर संसार है, दूसरी ओर परमात्म सुख। भक्त बीच में है। वह निश्चय नहीं कर पाता कि किधर जाय। अन्त में भगवान् स्वयं अनुग्रह कर उसे संसार के पथ से हटा कर अपनी ओर कर लेते हैं। जो उस सुख का अनुभव कर लेता है, वह उस सखी की तरह हो जाता है—

घट भरि दियो स्याम उठाइ।
नँकु तन की सुधि न ताको चली ब्रज समुहाइ।
श्याम सुन्दर नयन भीतर रहे आय समाइ।
जहाँ जहँ भरि दृष्टि देखे तहाँ तहाँ कन्हाइ॥

हिंडोला लीला में भी भगवान की नित्य लीला का वर्णन है। भगवान् ने स्वयं विश्वकर्मा को हिंडोला बनाने के लिए कहा। हिंडोला तैयार हुआ। कृष्ण, राधा के साथ झूला झूलते हैं। ललिता-विसाखा आदि उन्हें झुलाती हैं, देवता इसी लीला को देखने आते हैं। और इस लीला को देख मोहित हो जाते हैं। आगे सूरदास स्वयं इसे स्पष्ट करते हैं—

कहत मत इहैं बाँछा भये न बन द्रुम डार।
देह धरि प्रभु सूर विलसत ब्रह्म पूरण सार॥

यह लीला भी जैसे पहले ही कह चुके हैं—नित्य है। गोलोक की लीला का ही प्रतिबिम्ब है—

तैसिये यमुना सुभग जे रच्यो रंग हिंडोर।
तैसिये ब्रज वधू जनि हरि चित लोचन कोर॥
तैसो वृन्दा विपिन घन कुन्ज द्वार विहार।
विपुल गोपी विपुल बन रह नव नन्द कुमार॥
नित्य लीला नित्य आनन्द नित्य मंगल गान।
सूर सुर मुनि मुखन अस्तुति धन्य गोपी कान्ह॥

इसी प्रकार उनकी अन्य लीलाएँ भी हैं। उनमें यद्यपि आध्यात्मिक संकेत है, पर वे अस्पष्ट हैं। इन लीलाओं में इस प्रकार के संकेत नहीं, पर कवि अपने विषय को इतनी सुन्दरता से स्थापित करने में सफल हुआ है कि पाठक स्वयं भाव की उच्चतम, अपार्थिव एवं आध्यात्मिक भूमि तक पहुँच जाता है। इतना समझ चुकने के बाद सूर पर उच्छृङ्खल श्रृङ्गार का दोष रह ही नहीं जाता।

कुछ अन्य सामान्य प्रश्न

प्रश्न २८—'सूरसागर' के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

उत्तर—साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। समाज में जो सांस्कृतिक, धार्मिक या नैतिक स्थितियाँ होती हैं, साहित्य के ऊपर उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। किसी भी प्रबन्ध-काव्य में तत्कालीन सामाजिक वातावरण का चित्रण आवश्यक सा हो जाता है। यद्यपि सूरसागर प्रबन्ध-काव्य नहीं, और नाहीं सूर का लक्ष्य श्रीकृष्ण के समस्त जीवन का चित्रण था, फिर भी कृष्ण जीवन या लीलाओं का सूर ने जितना चित्रण किया है, उससे तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक स्थितियों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कवि ने समाज के संस्कार, पूजा व्रत, उत्सव, मनोरंजन, भोजन आदि के न्यूनाधिक विवरण दिए हैं।

सूरसागर में ब्रज का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है, उसमें ब्रज के प्राकृत-धन (कृष्ण) के चित्र तो हैं ही, साथ ही वहाँ के गार्हस्थ जीवन का भी विस्तार-पूर्वक वर्णन मिलता है अपने समय में उन्होंने आचार-विचारों का जैसा परिचय प्राप्त किया, उसका चित्रण भी उन्होंने वैसे ही कर दिया। जन्मोत्सव, छठी नाम कर्म, अन्नप्राशन, वर्ष-गाँठ, कर्ण छेदन, गोवर्धन पूजा आदि अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जिनमें सूरदास ने अपने समय के ब्रज के आचार-विचारों का चित्रण किया है। ये आचार-विचार पूर्णतः ग्रास्य हैं। इनका वर्णन भी सूर ने बड़े नैसर्गिक ढङ्ग से किया है, और साथ ही इन प्रसङ्गों में मनोविज्ञान की सामग्री भी उपस्थित की है।

(१) जन्मोत्सव—

अपने देश में पुत्र-जन्म अनेक पुण्यों का परिणाम समझा जाता है। सभी स्त्री-पुरुष पुत्र का मुख देखने को लालायित रहते हैं। कृष्ण का जन्म हुआ है। यशोदा कहती हैं—

"आवहू कन्त देव परसन्न भये पुत्र भयो मुख देखहु धाई ॥
दौरि नन्द गये सुत मुख देख्यौ सो शोभा सुख बरनि न जाई।"
कृष्ण का जन्म हुआ है और स्त्रीयाँ बधावा लेकर जा रही हैं—
"कोऊ भूषण पहिरयो, कोउ पहिरति, कोऊ वैसे ही उठि धाई।
कंचन थार दूध दधि-रोचन गावय चलीं बधाई ॥"

इस अवसर पर अनेक बाजे बजे। बन्दरवार बँधे, वेद ध्वनि हुई। ग्रह-नक्षत्र शोधन हुआ। सूर के समय डाढ़ी नाम की जाति थी। ये सूतों के समान ही थे। उनका नाचना भी सूर ने लिखा है। वे दान के लिए झगड़ते भी हैं।

(२) छठी व्यवहार—

छठी समय मालिन ने बन्दनवार बाँधा। बालक को पालकी में लिटा कर आँगन में लाया गया। नाइन ने महावर आदि लगाये। भृत्यों को भाँति भाँति के कपड़े बाँटे गये। सखियाँ पीले कपड़े पहन कर आईं। काजल व रोरी से छठी कर्म किया गया।

(३) नामकर्म—

ब्राह्मण व चारण घर में आये। उन्होंने दूर्वा दिया। नई हल्दी तथा दही से बालक का टीका कराया गया।

(४)अन्न-प्राशन—

प्राय: ६ महीने के बाद अन्न-प्राशन-संस्कार हुआ। पुरोहित को बुलाकर शुभ राशि सोधी गई। सखियों को बुलाकर यशोदा ने गीत गवाये। यशोदा को गालियाँ दी गईं। यशोदा ने कृष्ण का उबटन करके नये आभूषणों से सजाया। नन्द कृष्ण का मुह जुठारने के लिए उन्हें गोद में लेकर बैठे। पुरुष नन्द के साथ आनन्द-विनोद करने लगे। थोड़ी देर में थाली में खीर लाई गई। जब नन्द ने श्रीकृष्ण के मुख पर लगाई तो सब स्त्रियाँ गान करने लगीं।

(५) वर्ष गांठ—

वर्ष पूरा हुआ; सबको निमन्त्रण दिया गया; ब्राह्मण बुलाये गए;

चौक पूरा गया ; यशोदा ने कृष्ण के उबटन लगाकर स्नान कराया ; वर्ष-गाँठ का डोरा उसको बाँधा गया ; नाच हुआ । गान हुआ ।

(६) कर्ण-छेदन—

नाई आया बालक के हाथ में सोन्हारी और भेली दी गई ; सींक में रोचन भर कर यशोदा ने कान पर चिन्ह दिया ; बालक पर न्योछावर किया गया ; नन्द ने ग्वाल बालों को वस्त्र पहनाये । सूर ने इसका वर्णन किया—

कृष्ण कुँवर को कनछेदन है । हाथ सुहारी भेली गुर की ।
विधि विहँसत, हरि हँसत हेरि हरि यशुमति के धुकधुकी उरकी ॥

(७) गोवर्धन पूजा—

सब ग्वाल-बाल शकट सजाकर गोवर्धन की ओर चले ; साथ में वे जो षट्रस भोजन लाये थे, उससे गोवर्धन की पूजा की ; ब्राह्मण को बुलाकर यज्ञारम्भ किया गया, ग्वाल पर्वत पर चढ़कर उस पर दूध डालने लगे एवं वस्त्राभूषण चढ़ाने लगे ; लौटकर घर आये ; मंगलाचरण हुआ और दीप-मालिका मनाई गई ।

सूर सागर में पूजा का भी वर्णन है । सूर के समय में गौरी, शिव एवं सूर्य-का प्रचार था । लोग व्रत रखते थे एवं यमुना स्नान करते थे ।

उन दिनों शकुन मानना भी प्रचलित था । मृगमाला को दाहिनी ओर जाते हुए देखना अच्छा माना गया है । कौवे के उड़ने से भी शकुन जानने का वर्णन है ।

यद्यपि सूर ने राधा-कृष्ण का गन्धर्व विवाह कराया है तथापि सूर के सम्बन्ध में विवाह की जो रीति थी, उन सबका वर्णन उन्होंने किया है मौर धारण करना, निमन्त्रण, मण्डप और गान, गीत व वेद-मन्त्रोच्चारण, पाणि-ग्रहण व भाँवरि, गालियाँ गाना, कंगण खोलना आदि सभी बातों का वर्णन है ।

कंकण खोलने का वर्णन देखिए—

नहि छूटै मोहन डोरना हो ।
बड़े हो बहुत अब छोरियो हो ये गोकुल के राई ॥

की कर जोर करौ विनती, कै छुवौ श्री राधा जी के पाँई ।

इनके साथ ही सूरसागर में पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार कुछ में नैत्यिक एवं नैमित्तिक आचारों का भी वर्णन है । नैत्यक आचारों मंगलाचार, शृङ्गार, ग्वाल, राज-भोग, उत्थान, भोग, सन्ध्या, आरती, शयन का वर्णन है । नैमित्तिक आचारों में हिंडोला, चावर, फाग, बसन्त आदि का वर्णन है । आचार लोक-जीवन के भी अङ्ग थे ।

वसन्त का वर्णन देखिए—

कोकिल फूली बन-बन फूले मधुप गुंजारन लागे ।
सुनि भयो भोर रोर बन्दिन को मदन महीपति जागे ॥
नित दूने अंकुर द्रुम पल्लव जे पहिले दबदागे ।
मातहु रतिपति रीझ याचकन बरन करन दए वागे ॥

× × ×

ऋतु बसन्त के आगमहि मिलि झूम कहो ।
सुख सदन मदन को जोर मिल झूम कहौ ॥
कोकिल बचन सोहावनो मिलि झूम कहो ।
हित गावत चातक मोर मिलि झूम कहो ॥

सूरसागर में ऐसा भी वर्णन है कि सूर के समय तक ब्रजवासी तमोगुण से शून्य ये । अर्थात् वे प्याज, लहसुन, माँस, मद्य आदि तमोगुणी पदार्थों का सेवन नहीं करते थे । मनुष्य संसार की वासनाओं में इतना लिप्त था कि उसके सामने कोई आदर्श ही नहीं था । वह हिंसा, मद और मोह में पड़ा झूठी आशाओं में लीन रहता था । आहार-निद्रा आदि में ही वह अपना जीवन बिताता था—

अब हौं माया हाथ बिकानौ ।
परबस भयो पसु ज्यौ रजु बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ ॥
हिंसा मद ममता रस भूल्यो, आसा ही लपटानौ ।
यही करत आधीन भयौ हौं निद्रा अति न अघानौ ॥
अपने ही अज्ञात तिमिरि मैं बिसर्‌यो बरम ठिकानौ ।
सूरदास की एक आंख है ताहू कछु कानौ ॥

तब मनुष्यों के सामने आदर्श था केवल हरि-भक्त, किन्तु उसमें मन लगाना आसान न था। विषय वासनाओं का आकर्षण उसमें बाधक था। फिर भी साँसारिक यातनाओं से छूटने के लिए लोग सन्यासी बन जाते हैं, किन्तु यहाँ भी वे वैभव व कीर्ति के लोभ में फँस जाते थे।

किते दिन हरि सुमिरण बिनु खोये।

× × ×

तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै विषयिन के मुख जोये।

× × ×

सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरि परि सोये॥

पेट भरने में ही मनुष्य का जीवन बीत जाता। कभी भी वह अपने संकल्पों को पूर्ण न कर पाता और फिर—

कहत हे आगै जपि हैं राम।

बीचहिं भई और की औरे, परयौ काल सौ काम।

\+ \+ \+

सूरदास प्रभु कौ बिसरायौ बिना लिये हरि नाम।

मनुष्य वासनाओं में इतना लिप्त था कि उसे अपने कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान भी न रहता। जन्म-जन्मान्तर विषय-वासनाओं में वह भटकता रहता और कुत्ते व सुअर की तरह पेट भरता। अन्त में उसकी यह गति होती—

सुतन तज्यौ, तिय तज्यौ, भ्रात तज्यौ, तन तैं त्वच भई न्यारी।

स्रवन न सुनत, चरण गति थाकी, नैन बहै जल धारी॥

पलित केस कफ कण्ठ विरुंध्यौ, कलि न परति दिन राती।

माया छोड़ न छाड़ै तृष्णा, ये दोऊ दुख थाती।

यह तो थी सामाजिक अवस्था। धार्मिक अवस्था का भी चित्र देखिए—

जरत ज्वाला गिरत गिरि तें, स्वकर काटत सीस।

देखि साहस सकुच मानत, राखि सकत न ईस।

कामना करि कोटि कबहूँ, किये बहु पसु घात।

सिंह-सावक ज्यौं तजें गृह, इन्द्र आदि डरात॥

जप-तप केवल आडम्बर मात्र था। धर्म के नाम पर ढोंग और पाखण्ड

बढ़ रहा था। तब नाथपंथियों की प्रधानता थी। इन योगियों की योग-साधना का कुछ उल्लेख भ्रमरगीत के प्रसंग में हुआ है। आसन, ध्यान और साधना इनके साधन के अङ्ग थे। ये मुद्रा, भस्म, विषाण और मृगचर्म धारण करते थे। ये योगी गोरख का नाम लेकर अलख जगाया करते थे। ये कहते थे कि संसार ब्रह्ममय है और उसी रूप में उसे देखो। निम्न पद में इनकी साधना की स्थिति और स्पष्ट हो जायगी।

इगला पिंगला सुसमना नारी।
सून्यो सहज में बसो मुरारी॥
ब्रह्मभाव करि सब में देखौ।
अलख निरंजन को ही लेखौ॥
पद्मासन इन मन चित लायो।
नैन मूँदि अन्तर्गत ध्याओ॥
हृदय कमल में ज्योति प्रकाशी।
सो अच्युत अविगत अविनाशी॥

योग के अतिरिक्त उस समय निर्गुण उपासना का भी प्राधान्य था। काशी सन्यासी और तार्किक पण्डितों का केन्द्र था।

उस युग में साधारण लोगों का जीवन भी कुछ शुष्क-सा हो गया था। जीवन में विलासिता की मात्रा बढ़ गई थी। मनुष्य का जीवन आलिंगन, चुम्बन, परिरम्भन आदि में बीत जाता था—

आलिंगन चुम्बन परिरम्भन।
नख छत चारु परस्पर हासी॥
केतिक करना बेलि चमेली।
सुमन सुगंध सिचाये॥

अपने वैभव को प्रकट करने का भी बड़ा शौक था। जन-समाज उपासना के बाह्यांगों पर ही अधिक बल देता था, झूठे आडम्बर में फँसे थे। उनके जीवन में अस्थिर भावनाओं की प्रधानता थी। उनके सामने कोई आदर्श नहीं था। वे अपने जीवन को हास-विलास, चौपड़ व कलह में बिता देते थे—

चोपड़ि जगन मढ़े जुग बीते।

लोगों में समय की मात्रा का अभाव सा हो गया था। परकीया के प्रति प्रेम प्रचलन समाज के मूलोच्छेदन पर लगा हुआ था। लोग पनघट पर जाती हुई स्त्रियों को छेड़ते थे। ब्रज के लोग कृषि करते थे एवं स्त्रियाँ दधि बेचने जाती थीं। इस प्रकार सूरदास जी ने तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का पूर्ण चित्रण किया है।

प्रश्न २१—कृष्ण भक्ति के विकास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

उत्तर—भारतीय साहित्य के विद्यार्थी के लिये कृष्ण नाम चिर-परिचित है। महाभारत में तो श्रीकृष्ण का नाम अनेक बार आया है। महाभारत में श्रीकृष्ण कहीं योद्धा के रूप में, कहीं वेद वेदांग वेता के रूप में और कहीं धर्मोपदेष्टा के रूप में आये हैं। गीता के रूप में उन्होंने एक महान् धर्म का उपदेश दिया है। कई स्थानों पर इन्हें सात्वत धर्मोपदेष्टा कहा गया है। कृष्ण का अपर नाम वासुदेव भी है। वसुदेव की सन्तान होने के कारण कृष्ण व वासुदेव के नाम लोक में प्रसिद्ध हो गये।

छान्दोग्य उपनिषद में कृष्ण को देवकी पुत्र व घोर आंगिरस ऋषि का शिष्य कहा गया है। देवकी पुत्र कृष्ण वासुदेव कृष्ण ही थे। घोर आंगिरस ऋषि का नाम कौसीत की ब्राह्मण में भी आता है। उसके साथ ही कृष्ण के नाम का भी उल्लेख है। इन सब उल्लेखों से यही सिद्ध होता है कि कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव एवं माता का नाम देवकी था। वे घोर आंगिरस के शिष्य थे। समस्त वेदवेदांगों के ज्ञाता थे। वे राजनीति एवं युद्ध में भी कुशल थे। उन्होंने सात्वत सम्प्रदाय की स्थापना की। इसका मुख्य उद्देश्य था पशु-हिंसापूर्ण यज्ञों का विरोध एवं निवृत्ति मार्ग के स्थान पर प्रवृत्ति मार्ग का प्रचार। इसी धर्म का नाम बाद में वासुदेव धर्म हुआ। सम्भवतः इसी सर्वाङ्गीण सामाजिक एवं आत्मिक उन्नति के कारण वे जनता के विश्वासपात्र बन गये और जनता उनकी भक्त हो गई। सभी आबाल, वृद्ध, मूर्ख से लेकर पण्डित तक सभी उनकी पूजा करने में अपने को धन्य समझने लगे; अतः यह निश्चित है कि सात्वत सम्प्रदाय की स्थापना करने के कारण वे ईश्वर रूप में भी पूजित होने लगे। महाभारत में भीष्म ने उनकी ईश्वर रूप में ही पूजा की

है। बाद के पौराणिक साहित्य में उनके ईश्वर रूप का और भी विकास हुआ। हरिवंश पुराण, पद्मपुराण, वायुपुराण में यह कथा आती है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के तृतीय खण्ड एवं श्रीमद्भागवत के दशम् व एकादश स्कन्धों में तो कृष्ण की कथा अत्यन्त विस्तार से आई है। कृष्ण का जो स्वरूप हम पूर्व वर्णित कर चुके हैं उसके साथ ही पूतना बध, शकट भंजन, माखन चोरी, रास आदि प्रसङ्ग भी उन्हीं कृष्ण के साथ जोड़ दिये गये।

श्रीकृष्ण की उक्त लीलाओं का वर्णन महाभारत में नहीं आता है। अतः विद्वानों को इसमें ऐतिहासिक सत्यता ठीक रूप से प्राप्त नहीं होती। क्योंकि भागवत पुराणों को सर्व पुराण में श्रेष्ठ कहा गया है, उसमें कृष्ण की उक्त लीलायें हैं और महाभारत में नहीं, वह भी ऐतिहासिक ग्रन्थ है। कुछ विद्वानों ने कहा है कि कृष्ण क्राईष्ट का रूपान्तर है। जब ईसाई धर्म का मद्रास में विकास हुआ तो हिन्दुओं ने क्राईष्ट के रूप को कृष्ण का रूप दे दिया होगा, पर ये तो कोरी गप्पें ही हैं। कृष्ण का अस्तित्व तो हम ब्राह्मण ग्रन्थों तक में दिखा चुके हैं, उस समय तो क्राईष्ट के किसी पूर्वज का भी जन्म न हुआ होगा। अतः उन विद्वानों की धारणा स्वतः निर्मूल हो गई।

अब प्रश्न एक और भी है कि महाभारत में गोपियों का नामोल्लेख नहीं. फिर गोपियों की लीला क्या है? यह कहाँ से आई? इसके विषय में श्री भाण्डारकर के मतानुसार गोपी शब्द उस आभीर जाति से सम्बन्ध रखता है जो सीरिया से चलकर भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश में ईसा से पूर्व ही आकर बस गई थी। वह जाति बाद में दक्षिण में बस गई और वहाँ से गोपी-कृष्ण लीला का प्रचार हुआ। ये सब बातें कल्पित ही जान पड़ती हैं, क्योंकि ऐतद्देशीय किसी साहित्य में आभीरों (अहीरों) को बाहर से आया हुआ नहीं कहा गया है। यह भी सम्भव है कि आभीर क्षत्रियों में बाल-गोपाल की पूजा होती हो, किन्तु इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि वे (आभीर) बाहर से आये थे। भागवत में वसुदेव ने आभीराधिपति नन्द को अपना भाई माना है, इससे तो श्री भाण्डारकर का मत समाप्त हो गया। हाँ, हम यह सम्भावना अवश्य करते हैं कि ये आभीर दक्षिण वासी रहे होंगे, बाद में उत्तराखण्ड में आगये होंगे, इनमें बाल-कृष्ण की छटा एवं राधा और गोपियों

की लीला का प्रचार रहा होगा। जब उन्होंने उत्तराखण्ड में वास किया तो उक्त लीलायें भी कृष्ण-भक्ति के साथ ही जोड़ दी गईं।

उक्त सभी बातों से यह निष्कर्ष निकला कि बाल-कृष्ण की भक्ति दक्षिण की देन है। भागवत महात्म्य में एक स्थान पर लिखा है कि भक्ति द्रविण देश में उत्पन्न होकर कर्नाटक में बड़ी हुई। कहीं-कहीं महाराष्ट्र में भी उसका मान हुआ, किन्तु गुर्जर देश (गुजरात) में वह बूढ़ी हो गई, जब भक्ति वृन्दावन में आई तो फिर वह अत्यन्त प्रिय रूपवाली सुन्दरी नव-युवती सी हो गई। वैष्ण धर्म के प्रायः सभी आचार्य दक्षिण के थे, इससे यही सिद्ध होता है कि कृष्ण भक्ति का आरम्भ द्रविण देश में ही हुआ। भागवत् में एक श्लोक भी मिलता है; जिसमें लिखा है कि भक्त-जन द्रविण देश में ही अधिक पाये जाते हैं। वह श्लोक निम्न प्रकार है—

कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण परायणाः।
क्वचित्-क्वचित् महाराज द्रविडेषु च भूरिशः॥

यह तो हुई कृष्ण भक्ति के सम्बन्ध की एक कल्पना। अब एक अन्य कल्पना लीजिये। कृष्ण भक्ति को हम वैष्णव भक्ति भी कहते हैं "विष्णोः इदं वैष्णमृव"। विष्णु का नाम वेदों में अनेक बार आया है। 'इदं विष्णु-र्विचक्रमेत्रिया निदधेपदं" वेद के अनेक मन्त्रों में विष्णु को त्रिविक्रम, उरु गाय और गोपा भी कहा गया है। इसके साथ ही निम्न मन्त्र भी ध्यान देने योग्य है—

ता वां वास्तून्युष्मसि गमध्यै;
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः,
परमंपदमव भाति भूरिः॥

इसमें अनेक सींगों वाली गौओं का वर्णन है। वृष्णि शब्द भी है। यह ध्यान देने योग्य है कि पुराणों में कृष्ण को विष्णु का अवतार कहा गया है और उन्हें वृष्ण वंश में उत्पन्न कहा गया है। [वेद में इस मन्त्र का अर्थ अन्य ही है यहाँ हमने शब्द साम्य से उक्त अर्थ लिया है]। इसके साथ ही वेद में राधा, व्रज, वृषभानु, रोहिणी, अहि (कालीनाग), अर्जुन आदि कृष्ण

लीला से सम्बन्ध रखने वाले नाम आ गये है। इन शब्दों को देखने से सम्भवतः कोई वैदिक प्रणाली को न जानने वाला यही अर्थ निकालेगा कि वेद में इन नामों के होने से वेद कृष्ण के बाद लिखे गये हैं, पर वस्तुतः उक्त शब्दों का वेद में पौराणिक अर्थ नहीं, वहाँ तो अन्य ही अर्थ है। जैसे कृष्ण = रात्रि, अर्जुन=दिन, गौ = किरणें आदि।

पहले ऋषियों को वेदों का साक्षात् ज्ञान था। उन्होंने बाद में अन्यों को दिया। इस प्रकार से वेद की व्याख्या आरम्भ हुई। वेदों के छः अङ्ग है, उनमें एक निरुक्त भी है। निरुक्त के समय तक वेदों के ज्ञान या उसके अर्थ के कई सम्प्रदाय चल पड़े थे। उनमें नैरुक्तिक, याज्ञिक एवं ऐतिहासिक सम्प्रदाय प्रधान हैं। ऐतिहासिक सम्प्रदाय का कार्य भी वेद की व्याख्या करना ही है। महाभारत में लिखा है कि इतिहास और पुराणों से वेदों की व्याख्या करे "इतिहास पुराणाभ्यां, वेदं समुपवृं हयेत्" ऐतिहासिक व्याख्याता भी इतिहास की रक्षा के साथ वेदों की व्याख्या करते थे। ये लोक वैदिक कथाओं को आलंकारिक ढंग पर स्पष्ट करते थे। इससे जनता का मनोरञ्जन भी हो जाता था और उपदेश का उपदेश भी। अतः वेद में जो कृष्ण, राधा, गोप आदि शब्द आये हैं वे निश्चित ही ऐतिहासिक नहीं, पर ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम से ही रखे गये। देखिये—

सर्वेषांतु स नमानि कर्माणि च पृथक-पृथक।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्चं निर्ममे॥

आर्य जाति ने यह कल्पना किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिये नहीं अपितु विशुद्ध लोक-कल्याण भावना से ऐसा किया। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि राम, कृष्ण, व्यास आदि ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं? अवश्य ही ये विभूतियाँ भी ऐतिहासिक हैं। इसमें अवतार भावना-कवि कल्पना-प्रसूत है। जब अवतारों की कल्पना हो गई तो उपनिषदों के नारायण को कृष्ण के साथ मिलाया गया। नारायण को यज्ञपुरुष कहते हैं और वेदों में कहा है "यज्ञो वै विष्णुः" अर्थात् यज्ञ ही विष्णु है। इस प्रकार कृष्ण, नारायण और विष्णु एक हुए। कृष्ण वसुदेव के पुत्र होने के कारण वासुदेव भी कहलाते हैं। अतः वासुदेव, कृष्ण, विष्णु और नारायण एक ही हुए। इस प्रकार महाभारत में

जो कृष्ण वेदवेदांगवेत्ता व राजनीतिज्ञ हैं, छान्दोग्य-उपनिषद् में घोर आंगिरस ऋषि के शिष्य हैं वे ही प्रथम सात्वत धर्म के उपदेश बनते हैं और बाद में साक्षात् ईश्वर के रूप में पूजे जाते हैं:—

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"

वैष्णव धर्म के द्वितीय उत्थान काल तक यही बात बनी रही। द्वितीय उत्थान के समय भारत में बौद्ध धर्म का पतन हो रहा था। बौद्ध धर्म के पतन के बाद धार्मिक क्षेत्र में तीन धारायें चलीं—पूर्व में तांत्रिक मत का प्रचार हुआ; पश्चिम में शिव मत का एवं दक्षिण में विष्णु की पूजा प्रचलित हुई। कुछ काल के अनन्तर दक्षिण की यह भक्ति पद्धति उत्तर भारत में आगई। इसमें शिव को विष्णु की शक्ति माना गया। अब समस्त पश्चिमीय प्रदेश दक्षिण भारत में विष्णु के तीनों रूपों—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उपासना प्रचलित हो गई।

बाद में कुमारिल भट्ट के प्रयत्नों से बौद्ध धर्म का अवशेष भी लुप्त हो गया। कुमारिल भट्ट के बाद आचार्यों का युग प्रारम्भ हुआ। इन आचार्यों ने एक बार फिर वेद, उपनिषद और पुराणों की प्रतिष्ठा की। ये आचार्य-जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि—सब दक्षिण के ही थे। शङ्कराचार्य ने जीव व ब्रह्म की एकता स्थापित करके ज्ञान मार्ग की प्रतिष्ठा की। नारायण व शिव के लिये भी अनेक भक्तपूर्ण छन्द लिखे। इससे यह स्पष्ट है कि उन पर भी भक्ति का प्रभाव था।

वैष्णव धर्म में भक्ति के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य हैं। उत्तर भारत में धर्म क्षेत्र में भक्ति का बीज उन्हीं ने बोया। उनके कुछ ही पश्चात् आंध्र में निम्बार्क उत्पन्न हुए। भक्ति के इस क्षेत्र को उन्होंने और विस्तार दिया। बंग देश व उत्तर भारत में उनकी शिष्य मण्डली बढ़ गई। इसके साथ ही मधुरा भक्ति का भी जन्म हुआ। रामानुजाचार्य के प्रायः दो सौ वर्ष के बाद माधवाचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने वैराग्य व नवधा भक्ति का प्रचार किया। इन्होंने विष्णु को परमात्मा मानकर उनके राम व कृष्ण अवतारों को उपास्य माना। उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति का पूर्ण रूप से प्रचलित करने का श्रेय रामानन्द को है। उन्होंने भगवान् विष्णु को रामरूप की भक्ति का उपदेश

दिया। रामानन्द ने यह भक्ति जब सामान्य—स्त्री-शूद्र आदि के लिए भी सुलभ कर दी थी।

भक्ति के तृतीय व चतुर्थ उत्थान में परिवर्तन हुआ है। वेद के गोपा व ब्रज शब्दों से लीला प्रारम्भ हो गई। लीला का आध्यात्मिक अर्थ चित्तरंजिनी वृत्ति है। यह वृत्ति ईश्वरोपासना के अर्थ में परिवर्तित हो जाती है। भगवान् मुरली बजाते हुए अपने मधुर हास में सबको मुग्ध कर देते हैं, भक्त भी इसी अवसर को चाहता है। श्रीमद्भागवद् में यह लीला पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हुई। ब्रह्मवैवर्त में राधा भी कृष्ण के साथ मिल गई व राधा-कृष्ण राधामय हो गये। प्रकृति व पुरुष का अलौकिक सम्मिलन हो गया। इसी गोपी वल्लभ की कहानी ने राधा-कृष्ण का चरित्र बनकर बाल-गोपाल की उपासना का रूप धारण किया। हम पहले संकेत कर आये हैं कि निम्बार्क ने मधुरा भक्ति का प्रचार किया। भागवत व ब्रह्मवैवर्त की उक्त भावना ने कृष्ण मधुरा भक्ति के विकास में विशेष सहयोग दिया। पन्द्रहवीं शताब्दी तक मधुरा का इतना जोर हो गया कि श्रीमद्वल्लभाचार्य को इसके लिये शास्त्रीय व्यवस्था देनी पड़ी। इसके अनन्तर कुछ ही समय में समस्त उत्तर भारत कृष्ण की मधुरा भक्ति से प्लावित हो गया। उधर बंगाल में महाप्रभु चैतन्य ने कृष्ण की मधुरा भक्ति को दृढ़ किया। उन्होंने स्वयं को राधा रूप में मान कृष्ण की उपासना की, इधर, ब्रज में बल्लभाचार्य ने कृष्ण भक्ति को बढ़ावा दिया। उन्होंने कई बार भारत भ्रमण किया और इस भ्रमण में सहस्त्रों लोग कृष्ण-भक्त हो गये। बल्लभाचार्य ने पुष्टि मत की स्थापना की जिसमें बाल कृष्ण की पूजा का विशेष महत्त्व है। कृष्ण के साथ ही राधा का वर्णन है। उससे दीक्षित होने के बाद भी इसी भक्ति को कवि-कुल शिरोमणि श्री सूरदास जी ने आगे बढ़ाया। और इसके बाद भक्तजन भक्ति की उस सरिता में गोता लगाते अघाये नहीं।

संक्षेप में कृष्ण भक्ति के विकास की यही कहानी है'

———

प्रश्न ३०—'सूर की कल्पना उच्चकोटि की भावना सृष्टि करने वाली है, एवं अलकारों से सुसज्जित होकर वह और भी आकर्षक बन जाती है।'' इस कथन की समीक्षा कीजिये।

उत्तर—कविवर सूरदास जी की कल्पना शक्ति और अलङ्कार विधान उनके सरस हृदय, मर्मज्ञता तथा सौन्दर्यप्रियता की परिचायक है। भक्ति प्रकाशन में उनकी कल्पना को इतना विकसित होने का अवसर नहीं मिला, जितना कि वात्सल्य एवं शृंगार के वर्णन में; किन्तु फिर भी भक्ति में उसका सर्वदा अभाव भी नहीं है। अपनी इसी कल्पना के बल पर वे ऐसे भाव-चित्र उपस्थित कर सके हैं कि जो साहित्य संसार में सदा के लिए ऊपर रहेंगे। कृष्ण की पीताम्बर और राधा की नीली साड़ी तो सूर की आँखों के सामने सदैव उपस्थित रहते हैं। राधा-कृष्ण के वस्त्रों के ये रंग उन दोनों के शारीरिक रंगों के विपर्य ही हैं। इस पर सूर की कल्पना देखिए—

नीलाम्बर श्यामल तनु की छवि, तनु छवि पीत सुवास।
घन भीतर दामिनी प्रकाशत दामिनी घन चहुँ पास।

राधा की नीली साड़ी के अन्दर उसका गौर वर्ण का शरीर और कृष्ण के श्यामल अङ्गों के ऊपर उसका पीताम्बर ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे कि बादल के भीतर बिजली चमक रही हो और बिजली के भीतर बादल। लुप्तोत्प्रेक्षा द्वारा कितना सुन्दर यह चित्रण हुआ है।

भ्रमरगीत का एक पद देखिए। कितनी कल्पना है इसमें।

पिय बिनु नागिनि कारी रात।
कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात॥

नागिन का यह नियम है कि वह डस कर उलटी हो जाती है। उसका ऊपरी भाग काला एवं नीचे का श्वेत होता है। डसने के बाद वही श्वेत भाग प्रकट होता है। उक्त पद में भी कृष्ण-पक्ष की काली रात्रि का वर्णन है। कृष्ण पक्ष की रात्रि अपने प्रथम भाग में अन्धकार से काली होती है। रात्रि में चन्द्रमा देर से उद्वित होता है, जब चन्द्रोदय होता है तो उसकी ज्योत्सना श्वेत होती है। अब वह उलटी अर्थात् सफेद हो जाती है। इसी दृश्य के आधार पर सूर ने कल्पना की कि वह विरहणी को खाकर उलट कर श्वेत हो

जाती है। सूरदास की नेत्र सम्बन्धी एक कल्पना देखिए। इसमें उन्होंने लोचनों को भृङ्ग के रूप में चित्रित किया है—

लोचन भृङ्ग भये री मेरे।
लोकलाज बन धन बेलि तजि, आतुर ह्वै जु गड़े रे॥
श्याम रूप रस वारिज लोचन, तहाँ जाइ लुब्धे रे।
लपेटे लटकि पराग विलोकनि, सम्पुट लोभ परे रे॥
हँसनि प्रकास विभास देखि कै, निकसत पुनि तहँ बैठत।
सूरश्याम अंबुज कर चरननि तहँ तहँ भ्रमि-भ्रमि पैठत॥

एक सखि कृष्ण की छवि पर मुग्ध है। वह कहती है—ऐ सखि! मेरे नेत्र तो भौंरे बन गए हैं। लोक-लाज रूपी बन की घनी बेलों को छोड़कर तथा व्यग्र होकर कृष्ण के रूप रूपी कमल में गड़ गए हैं। पराग से युक्त कृष्ण नेत्र-कमलों पर मेरे नेत्र रूपी भ्रमर लुब्ध हो गए हैं, तथा लोभ वश उसके सौन्दर्य कोष में दृष्टि सन गई है। हँसी रूपी सूर्य के प्रकाश को देख कर विकसित हुए कमल नेत्रों से निकल कर हमारे नेत्र-भ्रमर बार-बार उन पर बैठते हैं, तथा कृष्ण के हाथ और चरण रूपी कमलों पर घूम-घूम कर जा बैठते हैं। नेत्रों को इससे अधिक उपमा और कौन देगा।

सूर की कल्पना कहीं भी भावुकता का अंचल छोड़कर नहीं बढ़ी। उनके काल्पनिक चित्र किसी न किसी भाव को व्यक्त करते ही हैं। कैसा ही प्रसंग हो, सूर कल्पना के साथ उसका आन्तरिक तत्त्व अवश्य ही चित्रित करेंगे। गोपियों की आंखों से निकलते हुए आंसुओं के विषय में एक चित्र इस प्रकार का है—

मेरे नैना विरह की बेलि बई।
खींचत नैन नीर के सजनी मूर पताल गई॥
विकसित लता स्वभाइ आपने छाया सघन भई।
अब कैसे निरुआरों सजनी, सब तन पसरि छई॥

(गोपी के) नेत्र से गिरते हुए आंसू विरह को लता को सींच रहे हैं। लता सिंचने फैलती है, यह विरह की बेल भी समस्त शरीर पर छा गई है। आह! अब उसे कैसे दूर किया जाय?

इस प्रकार नेत्रों पर सूर ने एक से एक बढ़कर कल्पनायें की हैं। अब मुरली पर की गई कल्पना पर भी विचार कीजिए—

अधर रस मुरली सौतिन लागी।
जा रस कों षट् ऋतु तप कीन्हों सो रस पिवत सभागी।
कहाँ रही, कहँ ते यह आई कौने याहि बुलाई।
सूरदास प्रभु हम पर ताकों कीनी सौति बनाई॥

मुरली क्या है गोपिकाओं से स्पर्धा करने वाली, राधा की सपत्नी है। जो कि कृष्ण के अधर रस को पी रही है। बड़ी सौभाग्यशाली है यह !!

मुरली सौत ही नहीं, धृष्ट, मानवती पत्नी भी है। इसने कृष्ण को मोहित ही नहीं किया, उसका सर्वस्व तक हरण कर लिया है, नाना नाच नचा चुकी है। देखिए तो—

मुरली तउ गोपालहिं भावति।
सुनरी सखि ! जदपि नंदनन्दहिं नाना भाँति नचावति।
राखति एक पांइ ठाड़ौ कर अति अधिकार जनावति।
कोमल अङ्ग आपु आज्ञा गुरु कटि टेड़ी ह्वै आवति॥
अति अधीन सुजान कनौड़े गिरिवर नारि नवावति।
आपुनि पौढ़ि अधर सेज्या पर कर-पल्लव-सन पद पलुटावति॥
भृकुटी कुटिल कोप नासा पुट हम पर कोपि कुपावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन अधर सुसीस डुलावंति॥

मुरली कृष्ण को अपने अधीन करके कैसा नाच नचा रही है। जैसा कहती है, कृष्ण को वैसा ही करना पड़ता है। कृष्ण को एक पाँव पर खड़ा करके रखती है। मजाल क्या जो वे उसकी आज्ञा के बिना एक पग भी इधर उधर हो जावें। कभी उनकी गर्दन झुका देती है, उसी की आज्ञा से कृष्ण की कमर भी टेड़ी हो जाती है और देखिए कृष्ण के अधरों की शय्या बनाकर लेट गई और स्वयं उसे पैर दबाने की आज्ञा देने लगी। भगवान् उस मानवती को मनाने के लिए चुपचाप उसके पैर दबाने लगे। यह है सच्ची कवि कल्पना ! कवि ने किस तरह हार्दिक भावों को व्यंजित कराया है।

विरह-वर्णन में सूर ने बादलों पर कैसी सुन्दर और अलौकिक कल्पना की है। पद को पढ़ते ही गोपियों की करुणा व्यक्त हो जाती है। देखिए—

देखियत चहुँ दिशि ते घन घोरे।
मानो मत्त मदन के हथियन बल करि बन्धन तोरे ॥
स्याम सुभग तन चुअत गंड मद बरसत थोरे-थोरे।
रुकत न पौन महावत हू पै मुरत न अंकुस मोरे ॥
बल बेनी बल निकसि नयन जल कुच-कंचुकि बँद बोरे।
मनो निकसि बग पाँति दाँत उर अवधि सरोवर फोरे ॥

बादल क्या हैं, मानो कामदेव के मद-मस्त हाथियों ने बन्धन तोड़ दिये हों। धीमी बूँदों का पड़ना ऐसा है मानों गण्डस्थल से मद चू रहा हो। पवन महावत उन्हें अंकुश मार रहा है फिर भी वे मुड़ते नहीं। मदमस्त हाथी महावत के मोड़ने से भी नहीं मुड़ता। आकाश में उड़ती हुई श्वेत बगुलों की पाँति मानों हाथियों के श्वेत दाँत हैं। उन्होंने कृष्ण के आने की अवधि रूपी सरोवर को फोड़ दिया है, आँखों से पानी जोरों से पड़ने लगा है जिसने कुच एवं कंचुकि आदि को डुबोकर पानी से तर कर दिया है। यहाँ बादल को हाथी का रूपक दिया है, हाथी काला होता है, बादल भी काले हैं। साङ्गरूपक का बहुत सुन्दर उदाहरण है।

नयनों के सम्बन्ध में हम दो पद पहले भी दे चुके हैं। अब वियोगिनी गोपियों के नयनों के वर्णन में कवि की कल्पना देखिए। इस वर्णन में कवि ने रूपक, उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक का अति सुन्दर वर्णन किया है।

सखि इन नैनन ते घन हारे।
बिन ही ऋतु बरसत निसि बासर, सदा मलिन दोउ तारे ॥
उरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे।
बदन-सदन करि बसे बचन खग, देख पावस के भी मारे ॥
ढुरि-ढुरि बूँद परत कंचुकि पर, मिलि काजर सौं कारे।
मानौं परन-कुटी सिव कीन्हीं, त्रिन मूरति धरि न्यारे ॥
सुमिरि-सुमिरि गरजत जल छाँड़त, अश्रु सलिल के धारे।
बड़त ब्रजहिं सूर को राखैं बिन गिरवर-धर प्यारे ॥

आँखों से बादल भी हार गये हैं, क्योंकि बादल तो वर्षा ऋतु में ही बरसते हैं, ये बिना ऋतु के ही बरस रहे हैं। इनके बरसने से आँखों की पुतलियाँ भी मैली पड़ गई हैं। दुख रूपी बरसात के कारण बचन-खग मुख रूपी घर में घुस गये हैं अर्थात् दुख के कारण मुख से वचन नहीं निकले। आँसुओं की धार में सारा ब्रज डूब रहा है। कृष्ण के अतिरिक्त कौन अब इसका रखवाला है। कितनी मनोहर कल्पना है।

सूर ने अनेक साँग रूपक बाँधे हैं और अपनी कल्पना के बल उसका पूर्ण निर्वाह किया है। वंशी को रण-विजयी राजा का रूप देकर उन्होंने युद्ध विजय के पश्चात् जो भी दृश्य होता है, उसका वर्णन किया है। देखिए—

वंशी बन राज आज आई रण जीति।
मेटति है अपने बल सबहिन की रीति॥
बिडरे गज यूथ शील, सैन लाज भाजी।
घूँघट पर कवच कहो, छूटे मान ताजी॥
कोऊ पद परसि गये अपने अपने देश।
कोऊ भारि रङ्क भये हुते जे नरेश॥
देत मदन मारुत मिलि दशौदिशि दुहाई।
सूर श्याम श्री गोपाल वंशी वश माई॥

विनय के पद में साँगरूपक का एक उदाहरण देखिए—

अब नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल॥
महामोह को नूपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल।
भरम भर्‌यो मन भयो पखावज चलत कुसंगत चाल॥
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दे ताल।
माया को कटि-फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दयौ भाल॥
कोटिक कला कांछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल॥

इस पद में सूरदासजी ने नट का रूपक बाँधा है, जो नृत्य करने के समय ऊपर से चोली पहन लेता है और माला भी पहन लेता है। उसके पैरों के

नूपुर भी मधुर आवाज से बजते हैं; वह कमर में फेंटा बाँधता है एवं मस्तक पर तिलक लगा लेता है। यहाँ भी बिल्कुल वैसा ही हैं। काम-क्रोध चोला है, विषयों की माला है। महामोह रूपी नूपुर हैं, उनमें निन्दा रूपी रसीला शब्द निकल रहा है। भ्रम मे भरा मन पखावज है। तृष्णा अन्दर से अनेक प्रकार के ताल दे रही है। कमर में माया रूपी फेंटा है और लोभ का तिलक माथे पर लगा है। इस प्रकार पूरा नट बनकर करोड़ों कलाओं को दिखला रहा है।

सूर ने कृष्ण-जन्म की घटना की असीम शोभा-शीलता का सिंधु के रूपक के द्वारा अनुरंजित करके वर्णन किया है, उसका भी एक चित्र देखियें—

सोभा सिंधु न अन्त रही री।
नन्द-भवन भरिपूरि उमंग चलि, ब्रज की वीथिनी फिरती बही री॥
देखी जाय आज गोकुल मैं, घर-घर बंचित फिरति दही री।
कहं लगि कहौं बनाइ बहुत विधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री॥
यसुमति उदर-उदधि तैं उपजी, ऐसी सबनि कही री।
सूर श्याम प्रभु इन्द्र नील मनि, ब्रज बनिता उर लाइ गही री॥

उक्त विवेचन से कवि की उर्वर कल्पना-शक्ति, सौंदर्य-प्रियता, सूक्ष्म-दर्शिता, चित्रोपमता, वाग्यवैदग्ध्य और असाधारण प्रतिभा का परिचय मिलता है।

इस प्रकार सूर की कल्पना अलंकारों का प्रयोग करती हुई किसी न किसी भाव अथवा चेष्टा का निर्माण करती है, कहीं-कहीं तो वह मुक्त रूप में भी भावों का अभिव्यंजन कराती है। इन्हीं के बल पर तो सूर को "सूर" कहा गया है। वास्तव में इस पक्ष में सूर अपनी कोई भी सानी नहीं रखते।

प्रश्न ३१—सूरसागर के पदों को आप किन प्रमुख शीर्षकों में वर्गीकृत करेंगे? काव्य की दृष्टि में आप किसे श्रेष्ठ समझते हैं और क्यों?

उत्तर—सूरसागर के पदों को हम निम्न प्रमुख शीर्षकों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) बिनय के पद, (ख) चौबीस अवतारों से सम्बद्ध पद, (ग) रामलीला के पव, (घ) मथुरा गमन से पूर्व कृष्णलीला सम्बन्धित पद (बाललीला, गोपी कृष्णलीला आदि के पद), (ङ) भ्रमर गीत व द्वारका गमन, (च) दृष्टकूट, (छ) विविध।

(क) विनय सम्बन्धी पद—इसमें प्रथम स्कन्द में आये भक्तवत्सलता, भक्त-महिमा, माया, अविद्या तृष्णा विनती आदि के पद एवं अन्यत्र आये हुए विनय के पद लिये जा सकते हैं विनय में भक्ति की सातों भूमिकाएँ हैं। सूर के ये पद बड़े ही सार-गर्भित हैं।

(ख) चौबीस अवतारों से सम्बंन्धित पद—इसमें द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ट, सप्तम अष्ठ एकादश तथा द्वादश स्कन्धों के पद आयेंगे। इनमें सृष्टि की उत्पत्ति, मनुष्यों की उत्पत्ति, पृथु अवतार, ध्रुवकथा, जड़ भरत की कथा, वृत्रासुर बध, कूर्म, बामन मत्स्य, नारायण, हंस, बौद्ध एवं कल्कि अवतार की कथाएँ हैं।

(ग) रामलीला सम्बन्धी पद—इसमें सूरसागर के नवम् स्कन्ध के कुछ पद हैं जिनमें सूक्ष्म रूप में रामलीला का वर्णन है। भागवत की अपेक्षा सूर-सागर में रामावतार की कथा विस्तार से कही गई है।

(घ) मथुरा गमन से पूर्व कृष्णलील सम्बन्धो पद—इन पदों को दो दो भागों में बाँट सकते हैं—बाललीला और गोपी-कृष्णलीला। बाललीला में जन्म, मथुरा से गोकुल आना, छठी, पूतना वध, बाल्य-वर्णन माखन चोरी, गो दोहन आदि होंगे। गोपो-कृष्णलीला में राधा कृष्ण क्रीड़ा, दान लीला रासलीला, पनघट लीला, होरी लीला आदि के पद हैं।

(ङ-) भ्रमरगीत व द्वारिका गमन सम्बन्धी पद—इन पदों में गोकुल से मथुरा चले जाने के बाद कंस आदि को मारना, उग्रसेन का पुनः राज्यारूढ़ होना, देवकी वसुदेव के दर्शन, कुब्जा के घर जाना, गोपियों का विरह और

भ्रमरगीत, द्वारिका गमन, जरासंध युद्ध, रुक्मिणी हरण, सुदामा दारिद्रमोचन आदि की कथायें हैं।

(च) दृष्टकूट—इन पदों में काव्य का चमत्कार दिखाना या गोप्य वस्तु को चतुरता से प्रकट करना ही सम्भवतः उनका अभिप्राय है। इसमें कहीं-कहीं नख-शिख वर्णन भी मिल जाता है। "अदभुत एक अनूपम बाग, युगल कोल पर गजवर क्रीड़त तापर सिंह करत अनुराग" आदि उसके उदाहरण हैं।

(छ) विविध—इस भाग में उनके सिद्धान्तों सम्बन्धी पद आयेंगे, जिसमें उन्होंने ईश्वर के रूप का वर्णन किया है, या अन्य सिद्धान्त, जैसे रास कम उन्होंने गांधर्व विवाह बताया है।

इन सब में काव्यकला की दृष्टि से जितना श्रेष्ठ हम, मथुरागमन से पूर्व व भ्रमरगीत के पदों को कहेंगे उतना अन्य को नहीं। यद्यपि विनय के पदों में भी काव्यमयता है, किन्तु जो आनन्द, वात्सल्य एवं शृङ्गार (संयोग एवं वियोग) के वर्णन में है वह अन्यत्र कहाँ ? सूर का समस्त कवि या कला मानों वहीं एकत्र होकर आ गई हो।

कृष्ण के बाल्य-वर्णन को पढ़ कौन होगा जो सूर को अन्धा कहेगा ? एवं दाँतों तले अँगुली न दबा देगा। इसी प्रकार भ्रमरगीत में विरह में रोती हुई गोपियों को देख कौनसा हृदय ऐसा होगा जिसके नेत्रों में आनन्दाश्रु न उमड़ आयेंगे। तभी तो कहा है—

"सूर कवित्त सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करे।"

———

प्रश्न ३२—क्या सूरसागर में रहस्यवाद है? सप्रमाण उत्तर दीजिये।

उत्तर—रहस्यवाद निराकार ईश्वर का उद्घाटन करने की प्रवृत्ति का नाम है ; क्योंकि जब उसका कोई अधिकार ही नहीं, वह अनन्त एवं अज्ञेय है तो उसका अनुभव तो किसी प्रकार होना ही चाहिये। अतः काव्य क्षेत्र में

ईश्वर की उसी रहस्यात्मकता (गुप्तता) को प्रकट करने की भावना रहस्यवाद कहलाती है ; किन्तु ईश्वर को जब हम साकार मान लेते हैं तो वहाँ रहस्य कुछ रह ही नहीं जाता, सब साक्षात् हो जाता है। अतः सगुण भक्ति के कवियों में रहस्यवाद ढूँढ़ना व्यर्थ ही है। सूर के सम्बन्ध में भी यही बात है। इतना होते हुए भी सूरसागर में कुछ पद ऐसे हैं जिनमें हमें रहस्यवाद की झलक मिल जाती है। सूर के इस रहस्यवाद को हम सगुण रहस्यवाद कहेंगे। वास्तव में रहस्यवाद भक्त की आत्मा की ऊँची उड़ान है जिससे वह परमात्मा की ओर अग्रसर होकर उसके अत्यन्त सन्निकट पहुँच जाता है।

वैसे तो भगवान् की समस्त लीला ही रहस्यात्मक है। एक आश्चर्य है, एवं जिस भगवत् अनुग्रह से यह आश्चर्य सत्य हो जाता है वह भी रहस्यमय वस्तु ही है। इसीलिए सूर ने अपने कई पदों में भगवान् की लीला के प्रति आश्चर्य व्यक्त किया है। देखिए—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगेहि मीठे फल को रस अन्तर्गत ही आवै।
परम स्वादु सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै॥
मन वाणी को अगम अगोचर जो जाने सो पावै।
रूप, रेख, गुन, जाति जुगति बिनु.....................॥

कवि ने कृष्ण की आनन्द लीलाओं में रहस्यात्मक संकेत दिए हैं। काली कमरी का रहस्य स्वयं श्रीकृष्ण दान-लीला में बताते हैं—

यह कमरी कमरी कवि जानति।
जाके जितनी बुद्धि हृदय में सो तितनी अनुमानति।
या कमरी के एक रोम पर वारों चीर नील पाटम्बर॥
सो कमरी तुम निदंति गोपी जो तीन लोक आडम्बर।
कमरी के बल असुर संहारे कमरि हि तें सब भोग॥
जाति-पाँति कमरी सब मेरी 'सूर' सबहि यह योग।

यह कमरी कृष्ण की रहस्यमयी योगमाया है जिसे हम अपनी बुद्धि से विभिन्न रूपों में समझते हैं।

श्रीकृष्ण और राधा के मिलन-सुख और गोपियों के संयोग-वर्णन से सूर ने प्रायः इस प्रकार के आध्यात्मिक संकेत किये हैं, जिसने उनकी पार्थिवता एवं ऐन्द्रियता अपार्थिवता एवं अतीन्द्रियता में बदल जाती है। गोपी जब कहती हैं--

का यह 'सूर' अजिर अवनी तनु तजि अगास पिय भवन समै हौं।
का यह ब्रजबापी क्रीड़ा जल, भजि नन्द नन्द सबै सुख लै हौं॥

तब उसके प्रेम का लौकिक रूप स्पष्ट आभासित होता है। राधा और कृष्ण के प्रेम को तो कवि ने चिरंतन एवं पुरातन प्रेम कहा है—

प्रकृति पुरुष नारी मैं वे पति काहे भूलि गई।
को माता को पिता बन्धु को वह तो भेंट नई॥

सूर की सबसे अधिक रहस्यात्मक उक्तियाँ मुरली के सम्बन्ध में हैं। मुरली का नाद लोक-लोकान्तर व्यापी है, उसका आदि अन्त नहीं। वास्तव में मुरली शब्द ब्रह्म का एक रूप है; जो कानों के माध्यम से लोकातीत रहस्य की अनुभूति का संकेत कराता है। वंशी की ध्वनि सुनते ही समस्त ब्रह्मांड आनन्द मग्न हो जाता है—

बाँसुरी बजाई आछे रंगते मुरारी।
सुनि कै धुनि छूट गई शङ्कर की तारी॥
वेद पढ़त भूल गये ब्रह्म ब्रह्मचारी।
रसना सुनि कहि न सकै ऐसी सुधि बिसारी
इन्द्र सभा थकित भई लगी जब करारी।
रम्भा को मान मिट्यो भूलो नृतकारी॥
जमुनाजू चकित भई नहिं सुधि संभारी।
'सूरदास' मुरली है तीन लोक प्यारी॥

मुरली-नाद का प्रभाव लोकातीत है। नारायण भी उसे सुन ललचाने लगते हैं। रास का सर्वोत्तम आनन्द तो उसी में केन्द्रीभूत है। वह कण-कण

को स्पन्दित कर सकती है। इसी प्रकार सूर की वृन्दावन सम्बन्धी कल्पना भी अद्भुत और विस्मयजनक है। वह श्रीकृष्ण के परमानन्द रूप का रूपकमय वर्णन है।

परन्तु हमारा संकेत तो यहाँ उन पदों की ओर है जिनमें भक्त की आत्मा भगवान् के वियोग से दुःखित होकर, एक अलौकिक एवं अकल्पित लोक का निर्माण करती है। निर्गुणी रहस्यवादी मूर्त चित्रों की उपेक्षा करते हैं परन्तु भक्त सूरदास के रहस्यवादी पदों में भी मूर्त चित्र स्पष्ट रूप से चित्रित हुए हैं। सन्तों के रहस्यवाद की तरह इनका रहस्यवाद एकदम मूर्त का तिरस्कार नहीं कर देता। अतः ऐसे रहस्यवाद का नाम विद्वानों ने 'सगुण रहस्यवाद' ही रखा है।

"सगुण-रहस्यवाद" के पदों में सूरदास जी ने अन्योक्ति पद्धति का प्रयोग किया है, एवं रूपकों के आश्रय से नकारात्मक चित्रों को स्पष्ट करने का यत्न किया गया है। सूर एक आदर्शमय लोक की कल्पना करते हुए लिखते हैं—

चकई री! चलि चरन सरोवर जहाँ न मिलन वियोग।
निसि दिन राम नाम की वर्षा, भय रुज नहिं दुःख सोग।
जहाँ सनक से मीन, हंस शिव, मुनिजन-रन-रवि-प्रभा-प्रकाश।
प्रफुल्लित कमल निमिष नहिं ससि डर गुंजत निगम सुवास॥
जेहि सर सुभग मुक्ति मुक्ता फल सुकृत अमृत रस पीजै।
सो सर छाँडि कुबुद्ध विहंगम? इहाँ कहाँ रहि कीजै॥

इस पद में आत्मा को चकई और विहंगम नाम से पुकारा गया है, तथा इसमें परोक्ष संसार की धुंधली सी आभा दिखाई है। अन्य स्थानों पर सूर ने आत्मा को सखी, भृङ्गी एवं सुवे के रूप में सम्बोधित किया है। एक अन्य पद देखिये—

भृङ्गी री! भज चरण कमल पद जहँ नहिं निशि को त्रास।
जहाँ विधि भानु समान प्रभा नख सों वारिज सुख रास॥

जिहिं किंजल्क भक्ति नव लक्षण थाम ज्ञान रस एक।
निगम सबक शुक नारद शारद मुनिगन भृङ्ग अनेक।
शिव विरंचि खंजन मन रंजन छिन-छिन करत प्रवेश।
अखिले कोश तहाँ बसत सुकृत जन प्रकटत श्याम दिनेश ॥
सुनु मधुकरी भरम तजि निर्भय राजिव रवि की आश।
सूरज प्रेम सिन्धु में प्रफूलित तृत चलि करे निवास ॥

उक्त दोनों पदों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सूर ने भावुक कवि-हृदय होने के नाते सगुण रहस्यवाद की सृष्टि की है। इसके साथ ही चकई भृङ्गी आदि विभिन्न वस्तुओं को एक ही वस्तु (आत्मा) का प्रतीक मानने से विनय की अलौकिकता भी स्पष्ट हो गई है।

अतः हम कह सकते हैं कि यद्यपि उन्होंने रहस्यवाद के लिए रहस्यवाद को नहीं अपनाया, फिर भी उनके वियोगी हृदय से कुछ वेदनायें इस रूप में प्रकट हुई हैं कि उसमें रहस्यात्मकता का आभास हो गया है। इस रहस्यवाद को हम शुद्ध रहस्यवाद न कहकर 'सगुण रहस्यवाद' ही कहेंगे।

———